

श्रीगणेशाय नमः॥

अथ जैमिनिसूत्रम्

भाषानुवादसमलङ्कृतम् ।



“सृष्टिस्थित्यन्तकर्त्री हरिहरविधिभिः सेवि-
तानन्ददात्री नानातन्त्रोक्तमार्गैर्मुनिभिरपि
धिषा भालचन्द्रोज्ज्वलाङ्गी । आरक्ताभत्रिने-
त्रा शिवशवनिलया राजराजेश्वरी सा वाचं नो
ह्यातनोतु प्रतिपदकठिने जैमिनेः सूत्रसंघे १ ॥”

पक्ष्मपापूरपूतात्मा पट्टुरेति नगोपरि ।

मूको वाचालङ्कृतः स्यात्पुराचार्यो यथा दिवि १
पारावारपरम्पारं निष्णातोऽपि प्रयाति वै ।

नमामि गणधीशं निर्विघ्नं कार्थसिद्धये ॥ २ ॥

अवतरणिका—इस संसारमें सबही प्राणी दुःखकी
ति और सुखकी प्राप्ति की इच्छा करते हैं और वह दुःख-
ति तथा सुखकी प्राप्ति पूर्वजन्ममें किये हुए अशुभकर्मों-
शान्ति और इस जन्ममें शुभकर्मोंका आचरण किये
कदापि नहीं होसकी इसीकारण आर्तत्राण परमकृपालु
मिनि मुनि पूर्वजन्मकर्मोंको सूचित करनेवाले इस जात-
स्वकी निर्विघ्नसमाप्ति की इच्छासे परमपूज्य पार्वतीपति
शिवजी महाराजका प्रणामरूप मङ्गलाचरण करते हुए अ-
हं प्रारम्भ करते हैं ॥

इस सूत्रके नीलकण्ठाचार्यने दो अर्थ लिखे हैं स
दिखातेहैं—

उपदेशं व्याख्यास्यामः । १ ।

अर्थ—(उ) इस पदके ईश जो महादेव सो हुए (उप
देश) तिन महादेवजीको प्रणाम करतेहैं । द्वितीय अर्थ—
जैमिनिमुनि प्रतिज्ञा करतेहैं कि अब पूर्वजन्मोंके शुभाशु
कर्मोंको सूचित करनेवाले उपदेश (जातकशास्त्र) को
कहेंगे ॥ १ ॥

जातकशास्त्रके तौ पाराशरीआदि अनेक ग्रन्थ हैं कि
इस ग्रन्थकी रचना करनेका क्या प्रयोजन है तिसका समा
धान करने हैं कि इसमें अन्य जातकशास्त्रोंकी अपेक्षा राशि
दृष्टि विलक्षण है सो दिखाते हैं—

अभिपश्यन्त्यृक्षाणि । २ ।

पार्श्वभे च । ३ ।

अर्थ—इस ग्रन्थमें राशिमें अपने सम्मुख और (तं
शिषोंको देखते हैं. अर्थात् चार राशि अपने सम्मुख औ
भागमें स्थित अष्टम, पञ्चम और ग्यारहवें ११ राशिकों
है । और स्थिरराशि अपनेसे पष्ठ ६, तृतीय ३,
९, राशिको देखता है । तथा द्विःस्वभावराशि अपने
७, चतुर्थ ४, और दशम १०, राशिको देखता है. इ
वृद्धकारिकाका प्रमाणभी है “चरं धनम्बिनाः”

* मेष, कर्क, तुला, मकर इन राशियोंको चर राशि
+ वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ, इन राशियोंको स्थिर कहते हैं
शुन, कन्या, धन, मीन इन राशियोंको द्विस्वभाव कहते हैं । २

स्थिरमन्त्रं विना चरम् । युग्मं स्वेन विना युग्मं पश्य-
 तीत्ययमागमः” सोई दूसरे आचार्यनेभी लिखा है—
 “चरानागवाणेशराशीन् स्वतो वै स्थिराः पट्टतीया-
 द्गराशीन् क्रमेण । स्वतः शैलमं वेदमं पङ्क्तिमश्च क्रमा-
 द्दे. स्वभावाः प्रपश्यन्ति पूर्णम्” चरराशि अपनेसे नाग
 रहिये अष्टम ८ बाण कहिये पञ्चम ५ ईश कहिये एकादश
 ११ वें राशिको देखता है । और स्थिरराशि अपनेसे पष्ठ ६,
 तृतीय, और अङ्क कहिये नवम ९ को देखता है और द्विस्वभाव
 राशि अपनेसे शैल कहिये सप्तम ७, वेद कहिये चतुर्थ ४ और
 पङ्क्ति कहिये दशम १० राशिको देखता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अब राशियोंके द्वारा ग्रहोंकी दृष्टि लिखते हैं:—

तन्निष्ठाश्च तद्वत् । ४ ।

अर्थ—पूर्वोक्त राशियों (चर-स्थिर-द्विस्वभाव) ^{रा} ~~ग~~
 स्थित ग्रहभी पूर्वोक्त स्थानोंमें स्थित ग्रहोंको देखते हैं—
 धातु चर राशिमें स्थित ग्रह अपनेसे ८।५।११ राशिपर
 स्थित ग्रहको देखते हैं । और स्थिरराशिमें स्थित ग्रह अप-
 नेसे ६।३।९ राशिपर स्थित ग्रहको देखते हैं । तथा द्विस्व-
 भावरशिमें स्थित ग्रह अपनेसे ७।४।१० राशिपर स्थित
 ग्रहको देखते हैं । इस विषयमें बृद्धकारिकाका प्रमाण देते हैं—
 “चरस्थं स्थिरगः पश्येत् स्थिरस्थं चरराशिगः । उक्त-
 ११ तूभयगो निकटस्थं विना ग्रहम्” —चरराशिमें
 ११ को ग्रह स्थिर राशिमें स्थित ग्रहको देखता है और स्थिरराशि-

में स्थित ग्रह चरराशिमें स्थित ग्रहको देखताहै तथा दिस्वभाव राशिमें स्थित ग्रह उभयस्थ ग्रहोंको देखता है; परन्तु समीप-स्थित ग्रहको नहीं ॥ ४ ॥

प्रथमाध्यायके तृतीयपादमें ^{अ. ३३} “शुभागले धनसमृद्धिः” इत्यादि सूत्रोंमें जो अर्गलापद है उसका स्वरूप दिखातेहैं ।

दारभाग्यशूलस्थार्गलानिध्यातुः । ५ ।

अर्थ—जिस राशिका विचार करना हो उस राशिके देखतेहुये ग्रहसे दार कहिये चतुर्थ ४ भाग्य कहिये द्वितीय २ शूल कहिये एकादश ११ वें स्थानमें स्थित जो जो ग्रह हों वह उत्तराशिको देखनेवाले ग्रहोंके अर्गला कहलाते हैं और कर्त्तरीभी कहलातेहैं । इस ग्रन्थमें राशि और भाव १ संख्याका जानना ‘क.ट.प.य’ आदि अक्षरोंकरके जैमिनीमुनिको अभीष्ट है सोई दिखाते हैं इस विषयमें आर्यभट्टोंकी कारिका लिखतेहैं—“क ट.प.य.वर्गभवैरिह पि-ण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः । नत्रि च शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम्” क.ट.प.य. आदि क्ष पण्यन्त अक्षरोंसे

+ दारभाग्यशूलस्थार्गला इस सूत्रमें वास्तवमें । दारभाग्यशूलस्थार्गला । ऐसा होना चाहिये क्योंकि रथा के आगेकी जिसको अर्गलाके अकारको मानकर छाप होरहा है और जहाँ छाप होताहै वहा “पूर्वत्रासिद्धम्” इस सूत्रके बलसे सन्धि नहीं होती है परन्तु यह आर्य सूत्र है “छन्दोगसूत्राणि भवन्ति” इस व्याकरण सूत्रके आर्यसूत्र वेदवत् माने जातेहैं और वेदमें “छन्दसि दृष्टानुविधिः” सूत्रके अनुसार ऊपरक्त स्थलोंमें सन्धि होसक्ती है ॥ ११ ॥

संख्या ग्रहण करै । और नकार अकार या स्वर हों तो शून्यका ग्रहण करै ॥ १ ॥ और जहाँ बारहसे अधिक संख्या प्राप्त हो उसमें बारहका भाग देय जो शेष रहै वही संख्या राशि और भावका बोध कराती है. इस विषयका उदाहरण इसी सूत्रमें दिखलाते हैं. जैसे कि—यहाँ 'दार' पद है इसमें (दा) वर्णसे बोध हुआ आठ ८ का और रकारसे बोध हुआ दो २ का इन दोनों अङ्कोंको ("अङ्कानां वामतो गतिः") अङ्गोंकी वामभागसे गति होती है) इसके अनुसार लिखा तो हुए २८ अठारहस. यह संख्या बारहसे अधिक है इसकारण इसमें बारहका भाग दिया तब शेष बचे चार ४

(संख्याचक्र)

क	१	८	९	५	१	५	१
ख	२	८	२	५	२	२	२
ग	३	६	३	५	३	३	३
घ	४	६	४	५	४	४	४
ङ	५	५	५	५	५	५	५
च	६	६	६	६	६	६	६
छ	७	७	७	७	७	७	७
ज	८	८	८	८	८	८	८
झ	९	९	९	९	९	९	९
ञ	०	०	०	०	०	०	०

यही भावसंख्या है इसीकारण सूत्रार्थमें दारपदसे चार ४ का ग्रहण किया है. यही प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये ॥ वर्णोंसे संख्या जाननेका क्रम चक्रमें लिखते हैं ॥

ऊपरके सूत्रमें जो अर्गला फही सो शुभग्रहोंके योगमें भी होती है और पापग्रहोंके योगमें भी होती है ॥

अब केवल पापग्रहोंके योगसे होनेवाली अर्गलाको दिखाते हैं—

* चतुर्दशमा, शुभग्रहयुक्त बुध, केवल बुध, वृहस्पति और शुक
 तार 'दा' इति है । + सूर्य, क्षीण चन्द्रमा, मंगल, पापग्रहयुक्त बुध
 प्रको : राहु, और केतु यह पापग्रह हैं ।

कामस्था तु भूयसा पापानाम् । ६ ।

अर्थ—जिस राशिके फलका विचार करना हो उस राशिसे तृतीय स्थानमें दोसे अधिकें तीन आदि पापग्रह हों तो वह पूर्वोक्त राशिके देखनेवाले ग्रहोंके अर्गलासंज्ञक होतेहैं ६

अब “दारभाग्ये”त्यादि सूत्रमें कहीहुई अर्गलासंज्ञाका वाचक सूत्र कहतेहैं—

रिष्फनीचैकामस्था विरोधिनः । ७ ।

अर्थ—जिस राशिका विचार करना हो उसराशिके देखनेवाले ग्रहसे रिष्फ कहिये दशम १० नीच कहिये द्वादश १२ काम कहिये तृतीय ३ स्थानमें जो ग्रह स्थित हों तो पहले “दारभा”ग्येत्यादिसूत्रमें कहेहुए चतुर्थ ४, द्वितीय २ और एकादश ११ स्थानमें स्थित ग्रहोंकी अर्गलासंज्ञा न होगी. अर्थात् जब दशमस्थानमें कोई ग्रह नहीं होगा तब चतुर्थस्थानमें स्थित ग्रहकी अर्गलासंज्ञा होगी और जब द्वादशस्थानमें कोई ग्रह नहीं होगा तबही द्वितीयस्थानमें स्थित ग्रहकी अर्गला संज्ञा होगी तथा जब तृतीय स्थानमें कोई ग्रह

× यद्यपि “दारभाग्येत्यादि” पञ्चमसूत्रके साथ “कामस्था तु भूयसा पापानाम्” इस सूत्रकोभी पढ़ देनेसे अर्गलासंज्ञा सिद्ध होजाती परन्तु “दारभाग्ये” त्यादिमें कहीहुई अर्गलासंज्ञाका वाचक सूत्र आगे कहा है उस सूत्रसे “कामग्ये”त्यादि सूत्रकाभी वाध होजाता इस कारण इसको अलग पढ़ा है ॥ + कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि इस सूत्रमें जो “भूयसा” पद पढ़ा है उसका यह अर्थ है कि-बहुत पापग्रहोंमें जो बलवान् हो उसके योगसे अर्गलासंज्ञा होतीहै यह कहना गीक नहीं. है क्योंकि अक्षरोंसे ऐसा अर्थ प्रतीत नहीं होताहै × इस सूत्रमें जो “पापानाम्” यह बहुवचनान्त पद पढ़ा है यह प्रतीत होता है कि तीनसे कम दो या एक पापग्रहके अर्गला नहीं होती है ॥

नहीं होगा तबहीं एकादशस्थानमें स्थित ग्रहकी अर्गला संज्ञा होगी अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥

दारभाग्येत्यादिके बाधक रिष्केत्यादिकाभी बाधक सूत्र कहतेहैं—

१८-८ न न्यूना विवलाश्च । ८ ।

अर्थ—यदि अर्गलाके प्रतिबन्धक दशमस्थानस्थित आदि ग्रहोंकी अल्प संख्या हो और अर्गलाकारक ग्रहोंकी संख्या अधिक है अर्थात् अर्गलाकारक ग्रह तौ दो हों और अर्गलाप्रतिबन्धक ग्रह एक हो तब अथवा अर्गलाकारक ग्रहोंकी अपेक्षा अर्गलाप्रतिबन्धक ग्रह निर्बल हों तौ वह अर्गलाके प्रतिबन्धक नहीं होंगे ॥ ८ ॥

अब तृतीय अर्गला और अर्गलाके प्रतिबन्धक दिक्षातेहैं—

१ प्राग्बत्रिकोणे । ९ ।

अर्थ—त्रिकोणके विषे अर्गला और अर्गलाके प्रतिबन्धक पूर्वकी समान जानना. (पञ्चम और नवमस्थानकी त्रिकोण संज्ञा है) अर्थात् जिस राशिके फलका विचार करना

* बाका "दारभाग्येत्यादि सूत्रमेही शान्त पद देनेसे पञ्चमस्थानकी अर्गलासंज्ञा होजाती और "गिष्फनीजेत्यादि सूत्रमे धातुपद देनेसे नवमस्थानी ग्रहकी प्रतिबन्धकता सिद्ध होजाती फिर "प्राग्बत्रिकोणे" यह सूत्र क्यों बनाया । समाधान । यद्यपि उपरोक्त रीतिसे इस सूत्रका कार्य होजाता परन्तु आगे जो "विपरीत केनो." यह सूत्र पढ़ा है उसका विषय त्रिकोणस्थानही है और यदि पूर्वोक्त सूत्रोंके अन्तर्गत शान्त और धातुपद पड़ेते तौ "विपरीत केनो" यह सूत्र चतुर्थ, द्वितीयस्थानआदिमेंभी प्रवृत्त हो जाता सो यह सूत्र त्रिकोणमेंही प्रवृत्त हो इसकारण "प्राग्बत्रिकोणे" इस सूत्रको अलग पड़ा है ॥

हो उस राशिको देखनेवाले ग्रहसे पाँचवें स्थानमे जो ग्रह स्थित हो वह ग्रह उस राशिको देखनेवाले ग्रहका अर्गला होता है । और यदि जिस राशिका विचार करना हो उस राशिको देखनेवाले ग्रहसे नवम स्थानमें अर्गलाकारक ग्रहसे बलवान् ग्रह हो अथवा अर्गलाकारक ग्रहोंकी अपेक्षा अधिक ग्रह हों तौ वह पञ्चमस्थानमें स्थित ग्रहका अर्गला नहीं होता है ॥ ९ ॥

केतुके विषयमें विशेषता दिखलातेहैं—

विपरीतं केतोः । १० ।

अर्थ—“प्राग्बन्धिकोणे” इस सूत्रमें जो विधि कही है सो केतुके विषयमें विपरीत होती है; अर्थात् जिस राशिके फलका विचार करना हो, उस राशिको देखनेवाले केतुग्रह नवमस्थानमें जो ग्रह स्थित हो वह ग्रह उत्तरराशिको देखनेवाले ग्रहका अर्गला होता है । और यदि जिस राशिका विचार करना हो उस राशिको देखनेवाले केतुग्रहसे पञ्चमस्थानमें अर्गलाकारक केतुग्रहसे बलवान् कोई ग्रह हो अथवा अर्गलाकारक केतु ग्रहकी अपेक्षा अधिक ग्रह हों तौ वह नवमस्थानस्थित केतु ग्रहका अर्गला नहीं होता है ॥ १० ॥

इस जातकशास्त्रमें विशेष करके कारकोंके द्वारा ग्रहोंका फल कहेंगे इस कारण कारकोंको वर्णन करनेकी इच्छा क-
स्तेत्यन्ते, चैसित्ति, मृत्ति, शयन, आत्मन्कारस्त्वका, निस्तपठ, चरेतेह.

**आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगः सप्तानाम-
ष्टानां वा । ११ ।**

अर्थ—सूर्यसे लेकर शनैश्चरपर्यन्त सात अथवा सूर्यसे लेकर राहुपर्यन्त आठ ग्रहोंके मध्यमें जो ग्रह कला-
 ओंकरके सब ग्रहोंकी अपेक्षा अधिक हो वह ग्रह आत्मका-
 रक होता है । यदि दो चार ग्रहोंकी कला समान हों तो
 उनमें जो ग्रह अंशोंकरके सबकी अपेक्षा अधिक हो वह
 आत्मकारक होता है । और यदि दो चार ग्रहोंके कला और
 अंश दोनोंही समान हों तो जो ग्रह आगे कही हुई रीतिके
 अनुसार बलवान् हो वह आत्मकारक होता है । और यदि
 राहुके कला अंश आदि सब ग्रहोंकी अपेक्षा अल्प हों तो
 राहुही आत्मकारक होता है, क्योंकि “मेपाद्यसव्यमार्गेण
 राहुकेतू न कारकौ” मेप, वृष इत्यादि सूधे क्रमसे राहु और
 केतु कारक नहीं होते हैं. किन्तु मीन, कुम्भ, मकर इत्यादि
 उलटे क्रमसे राहु और केतुको कारकत्व होता है; और रा-
 हुकी विपरीतता तो प्रसिद्धही है इसकारण सूत्रमें जो अधिक
 शब्द पड़ा उसका राहुके विषयमें विपरीत अर्थ किया है अ-
 र्थात् । अधिकका अल्प अर्थ किया है. इस विषयमें वृद्ध-
 कारिकाकाभी प्रमाण है “भागाधिकः कारकः स्याद-
 ल्पभागोऽन्यकारकः”—जिसके कलाअंशादि अधिक
 हों वह कारक होता है. और अन्यकारक अर्थात् राहुका-
 रक तब होता है जब उसके सब ग्रहोंकी अपेक्षा कलाअं-
 शादि अल्प हों ॥ ११ ॥

८-

आत्मकारका फल कहते हैं—

स ईष्टे बन्धमोक्षयोः । १२ ।

अर्थ—वह आत्मकारक बन्ध

होता है. अर्थात् वह आत्मकारक यदि नीचग्रह और पापग्रहोंके योगसे अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे बन्धन आदिका दुःख देता है और यदि उच्च तथा शुभग्रहोंके योगसे अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे मोक्ष आदि सुख देता है. अथवा आत्मकारक यदि नीच और पापग्रहोंके योगसे पापकर्मोंमें प्रवृत्ति कराकर संसारबन्धनका दुःख देता है और उच्च तथा शुभग्रहोंके योगसे काशीवासआदि शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति कराकर मोक्ष आदि सुख देता है ॥ १२ ॥

अब अमात्यकारक दिखाते हैं—

५. तस्यानुसरणादमात्यः । १३ ।

अर्थ—आत्मकारककी अपेक्षा जिसके कला अंशादि कम हों वह अमात्य (मंत्री) कारक होता है. इससे मंत्री-आदिका विचार किया जाता है अर्थात् यदि अमात्यकारक नीच और पापग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या योग हो तो मंत्रीआदिके द्वारा अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे दुःख प्राप्त होता है. और यदि वह अमात्यकारक उच्च और शुभग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या योग हो तो मंत्रीआदिके द्वारा सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥

भ्रातृकारक दिखाते हैं—

६. तस्य भ्राता । १४ ।

रत्नेवा. अर्थ—अमात्यकारकके अंशकलाओंसे जिस ग्रहके कला आत्मादि कम हों वह भ्रातृकारक कहा जाता है. इससे भ्रातृ-विचार करा जाता है अर्थात् वह भ्रातृकारक ग्रह पापग्रहोंके स्थानमें हो या उसको

योग हो तब वह भ्राताआदिके द्वारा अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे दुःख देता है. और यदि वह भ्रातृकारक उच्च और शुभग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या उसको शुभग्रहोंका योग हो तब वह भ्रातृकारक ग्रह भ्राताआदिके द्वारा सुख देता है ॥ १४ ॥

मातृकारक दिखाते हैं—

तस्य माता । १५ ।

अर्थ—भ्रातृकारकी अपेक्षा जिस ग्रहके कलाअंशादि कम हों वह मातृकारक कहाता है. उसके द्वारा मातादिका विचार कियाजाता है, अर्थात् मातृकारक ग्रह यदि नीच और पापग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या उसको पापग्रहोंका योग हो तब वह माताआदिके द्वारा अपनी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे दुःख देता है. और यदि वह मातृकारकग्रह उच्च और शुभग्रहोंके स्थानमें स्थित हो या उसको शुभग्रहोंका योग हो तब माताआदिके द्वारा सुख देता है ॥ १५ ॥

पुत्रकारक दिखाते हैं—

तस्य पुत्रः । १६ ।

अर्थ—मातृकारकग्रहके कलाअंशोंकी अपेक्षा जिस ग्रहके कला अंशादि कम हों वह पुत्रकारक होता है. इससे पूर्वोक्तरीतिके अनुसार इसकी दशा और अन्तर्दशाओंमें पुत्रके द्वारा सुखदुःखका विचार करना चाहिये ॥—१६ ॥

जातिकारक दिखाते हैं—

तस्य जातिः ।

अर्थ—पुत्रकारककी अपेक्षा जिस ग्रहके कटा अंशादि कम हों वह ज्ञातिकारक कहाता है इससे पूर्वोक्त रीतिके अनुसार इसकी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे जातिके द्वारा सुखदुःखका विचार करना चाहिये ॥ १७ ॥

स्त्रीकारक दिखाते हैं—

तस्य दाराश्च । १८ ।

अर्थ—ज्ञातिकारककी अपेक्षा जिस ग्रहके कटा अंशादि कम हों वह ग्रह दारकारक कहाता है उससे पूर्वोक्त रीतिके अनुसार इसकी दशा और अन्तर्दशाओंमें स्त्रीके द्वारा सुखदुःखका विचार करना चाहिये ॥ १८ ॥

पुत्रकारकके विषयमें मतान्तर दिखाते हैं—

मात्रा सह पुत्रमेके समामनन्ति । १९ ।

अर्थ—किन्ही जातकके आचार्योंका ऐसा मत है कि मातृकारकसेही पुत्रकारकका विचार होता है. अर्थात् मातृकारक और पुत्रकारक दोनों एकही हैं इसकारण मातृकारक ग्रहसेही पुत्रकारकका विचार करना चाहिये ॥ १९ ॥

यहाँपर्यन्त चलकारक कहे, अब नित्यकारकों (स्थिर कारकों) को कहनेका आरम्भ करते हुये जैमिनि मुनि प्रथम भूमिन्पादि स्थिर कारकोंको कहने हैं—

भगिन्याऽऽरतः श्यालः कनीयाञ्जननी-

१-२०-२ चेति । २० ।

अर्थ—बहिन, स्त्रीका भ्राता (साटा), छोटा भ्राता और माता इनका मङ्गलसे विचार करना चाहिये; अर्थात् यदि मङ्गल उच्चस्थान और शुभग्रहोंके स्थानमें पड़ा हो तो मङ्गलकी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे बहिन आदिके द्वारा सुख होता है और यदि मङ्गल नीच या पापग्रहोंके स्थानमें पड़ा हो तो मङ्गलकी दशा और अन्तर्दशाओंके विषे बहिन साटे आदिके द्वारा दुःख होता है ॥ २० ॥

अब मातुलआदि स्थिरकारक दिखाते हैं—

मातुलादयो बन्धवो मातृसजातीया

२१- इत्युत्तरतः । २१ ।

अर्थ—मामा (माताका भ्राता) आदि माताकी बहिर्न और माताआदि तथा माताकी जातिके पुरुषोंकी पूर्वोक्त रीतिके अनुसार बुधकारकसे विचार करना चाहिये ॥ २१ ॥

पितामहादिस्थिरकारक दिखाते हैंः—

पितामहः पतिपुत्राविति गुरुमुखादेव

जानीयात् । २२ ।

अर्थ—पितामह (दादा) पति और पुत्र इनका बृहस्पति, शुक्र, और शनैश्वरसे पूर्वोक्तरीतिके अनुसार सुखदुःखरूप फलका विचार करे; अर्थात् बृहस्पतिसे पितामहका विचार करे, शुक्रसे पतिका विचार करे, शनैश्वरसे पुत्रका विचार करे ॥ २२ ॥

पत्न्यादिकारक दिसाते हैं:—

पत्नीपितरौ श्वशुरौ मातामहा इत्यन्ते-
वासिनः । २३ ।

अर्थ—स्त्री, माता, पिता, श्वसुर—सासू, मातामह (नाना) इन सबका विचार शुक्रसे करना चाहिये ॥ २३ ॥

जहाँ कारकत्वमें दो तीन ग्रह समान हों तहाँ किस ग्रहके द्वारा विचार करे; इस सन्देहको दूर करनेके निमित्त ऐसा आचार्य्यने समाधान किया है कि जो ग्रह स्वाभाविक बलवान् हो वही कारक होता है; इसकारण ग्रहोंके स्वाभाविक बलका निरूपण करते हैं:—

मन्दोऽज्यायान् ग्रहेषु । २४ ।

अर्थ—शनिआदि सूर्य्यपर्प्यन्त सार्ताँ ग्रहोंमें शनैश्चर सब ग्रहोंकी अपेक्षा दुर्बल है सोई बृहज्जातकमें कहा है. “शक्रबुधशुचराधा रुद्रितो वीर्य्यवन्तः” शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा, सूर्य्य यह क्रमसे उत्तरोत्तर बलवान् हैं; अर्थात् शनिकी अपेक्षा मङ्गल बलवान् है, मङ्गलकी अपेक्षा बुध बलवान् है, बुधकी अपेक्षा बृहस्पति बलवान् है, बृहस्पतिकी अपेक्षा शुक्र बलवान् है, शुक्रकी अपेक्षा चन्द्रमा बलवान् है. चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्य्य बलवान् है ॥ २४ ॥

चरदशाके वर्ष जाननेमें उपयोगी होनेके कारण विमराशियोंकी गणनाका भेद दिसाते हैं:—

प्राचीवृत्तिर्विषमभेषु । २५ ।

अर्थ—प्रथम, तृतीय, पञ्चमआदि विषमराशियोंकी

मसे मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन, कुम्भ इसप्रकार गणना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

सम राशियोंकी गणनाका प्रकार लिखते हैं—

१-२३- परावृत्त्योत्तरेषु । २६ ।

अर्थ—द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठआदि सम राशियोंकी उलटे क्रमसे गणना होती है. जैसे मीन, मकर, वृश्चिक, कन्या, कर्क, वृष ॥ २६ ॥

प्राचीवृत्तिरित्यादि उपरोक्त दोनों सूत्रोंमें कहीहुई सम विषमराशियोंकी गणनाके विषयमें अपवादसूत्र दिखाते हैं—

— न क्वचित् । २७ ।

अर्थ—कसी किसी स्थानमें विषमराशियोंकी क्रमसे स. १ राशियोंकी व्युत्क्रमसे गणना नहीं होती है ॥ २७ ॥

चरदशाके वर्ष जाननेकी रीति लिखते हैं—

१-२ नायान्ताः समाः प्रायेण । २८ ।

अर्थ—कौन कौन राशिका कौन स्वामी है यह विचार इस ग्रन्थमें नहीं लिखा है सो अन्य ग्रन्थकी रीतिसे लिखते हैं—तथा च बृहज्जातके—

* किसी आचार्यका ऐसा मत है 'मेपादित्रिभिर्ज्ञेयं पद मोजपदे क्रमात् । दशाब्दानयने कार्या गणना व्युत्क्रमेण समे'—मेपादि तीन तीन राशियोंका एक २ पद होता है अर्थात् बारहों राशियोंके मेष-वृष-मिथुन, कर्क सिंह कन्या, तुला, वृश्चिक धन, मकर, कुम्भ, मीन, यह चार पद होते हैं इनमें प्रथम और द्वितीय पदकी गणना क्रमसे करनी चाहिये और द्वितीय चतुर्थ पदकी गणना उलटे क्रमसे करना चाहिये ॥ + "जगत्तन्मुपोरदयोगादे" इत्यादि सूत्रोंके विषयमें इस चरदशाका व्यवहार होता है ॥

क्षितिजसितज्ञचन्द्ररविसौम्यसितावनिजाः ।

सुरगुरुमन्दसौरिगुरवश्च गृहांशकपाः ॥ १ ॥

अर्थ—मेपका स्वामी क्षितिज (मंगल) है, वृषका स्वामी सित (शुक्र) है, मिथुनका स्वामी ज्ञ (बुध) है, कर्कका स्वामी चन्द्रमा है, सिंहका स्वामी रवि (सूर्य) है, कन्पाका स्वामी सौम्य (बुध) है, तुलाका स्वामी शुक्र है, वृश्चिकका स्वामी अवनिज (मंगल) है, और केतु है, धनका स्वामी सुरगुरु (बृहस्पति) है, मकरका स्वामी मन्द (शनैश्वर) है, कुम्भका स्वामी शनैश्वर और राहु है, और मीनका स्वामी बृहस्पति है ॥ १ ॥

चरदशामें जिन २ राशियोंके दशाके वर्ष जानना और त हों उन २ राशियोंसे लेकर, जिन जिन स्थानोंमें उनके स्वामी स्थित हों तहाँ पर्यन्त गणना करै जो संख्या आवै वही उस राशिके वर्षोंकी संख्या होगी. जैसे मिथुनराशिकी दशाके वर्ष लाना हों और मिथुनराशिका स्वामी बुध कुम्भराशिमें स्थित हो तब मिथुनसे लेकर कुम्भपर्यन्त गणना करी तब आठ हुए यही चरदशामें मिथुनराशिकी दशाके वर्ष होंगे । और यदि राशिका स्वामी अपनेही स्थानमें बैठा हो तब उस राशिकी दशाके बारह वर्ष होते हैं । और यदि जिस राशिकी दशाके वर्ष जानना हों उस राशिका स्वामी अपने स्थानमें स्थित होकर उच्चका पड़ा हो तब एक वर्ष बढ़जाता है; अर्थात् उस राशिकी दशा तेरह वर्षकी होती है । और यदि जिस राशिकी दशाके वर्ष जानना हों उस राशिका स्वामी अपने स्थानमें स्थित होकर नीचका

हो तो दशमें एक वर्ष घट जाता है, अर्थात् उस राशिकी दशा ग्यारह वर्षकी होती है । इस विषयमें बृद्धकारिकाका प्रमाण—

“तस्मात्तदीशपथ्यन्तं संख्यामत्रदशां विदुः ।

वार्षद्वादशकं तत्र नीचदेकं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं विनिःक्षिपेत् ।

तथैव नीचखेटस्य वर्षमेकं विशोधयेत् ॥ २ ॥”

अर्थ—चर दशाके विषे जिस राशिकी दशाके वर्ष जानने हों उससे लेकर उसका स्वामी जिस स्थानमें बैठा हो तहाँपर्यन्त गणना करे जो संख्या आवे वही उक्त राशिकी दशाके वर्ष कहेजाते हैं, और यदि उस राशिका स्वामी अपनेही स्थानमें हो तो उस राशिकी बारह वर्षकी दशा होती है ॥ १ ॥ और यदि अपने स्थानमें स्थित होकर ग्रहोच्च हो तो बारहमें एक वर्ष और बढ़ादेय और यदि नीच हो तो बारहमें एक वर्ष घटा देय ॥ २ ॥

इस ग्रन्थमें ग्रहोंकी उच्चता और नीचताका विचार नहीं किया है इसकारण उच्च नीच ग्रहोंके जाननेकी रीति लघु-जातकके अनुसार लिखते हैं—

“अजघृषभमृगाङ्गनाकुलीरा ज्ञपवणिजौ च दि-

वाकरादितुङ्गाः । दशशिखिमनुषुक्तिथीन्द्रि-

यांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः ॥ १ ॥”

अर्थ—मेषके दशअंशपर्यन्त सूर्यका उच्च और नृत्तके दशअंशपर्यन्त नीच होता है । वृषराशिके तीन अंशपर्यन्त चन्द्रमाका उच्च और बुधिकके तीन अंशपर्यन्त नीच होता

है, मकरके अष्टाईस अंशपर्यन्त मङ्गलका उच्च और कर्कके अष्टाईस अंशपर्यन्त नीच होता है, कन्याके पन्द्रह अंशपर्यन्त बुधका उच्च और मीनके पन्द्रह अंशपर्यन्त नीच होता है, कर्कके पाँच अंशपर्यन्त बृहस्पतिका उच्च और मकरके पाँच अंशपर्यन्त नीच होता है, मीनके सत्ताईस अंशपर्यन्त शुकका उच्च और कन्याके सत्ताईस अंशपर्यन्त नीच होता है, और तुलाके बीस अंशपर्यन्त शनैश्वरका उच्च और मेषके बीस अंशपर्यन्त नीच होता है ॥ १ ॥

वृश्चिक और कुम्भराशिकी दशाके वर्ष जाननेमें जो वि-
शेषज्ञा है सो बृहत्कारिकाके अनुसार लिखते हैं—

कुजसौरी केतुराह राजानावलिकुम्भयोः ।
कुजसौरी केतुराह युक्तौ तत्र स्थितौ यदि ॥
वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकं विनिर्दिशेत् ।
दिनाथक्षेत्रयोरत्र निर्णयः कथ्यतेऽधुना ॥
एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः ।
तदान्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत् ॥
स्वक्षेत्रे मिलितावेव स्वामिनस्त्वेकशस्तथा ।
एकं स्य स्वगृहस्यत्वं नहि कार्योपयोगिकम् ।
द्वावप्यन्यर्क्षगौ तौ चेत्सग्रहो बलवान् भवेत् ।
ग्रहयोगसमानत्वे चिन्त्यं राशित्रयाद्वलम् ॥
चरस्थिरद्विःस्वभावाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः ।
राशिसत्त्वसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत् ॥

एकः स्वोच्चगतस्त्वन्यः परत्र यदि संस्थितः ।

ग्राहयेदुच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै ॥

अर्थ—मङ्गल और केतु यह दोनों वृश्चिकराशिके स्वामी हैं, और शनैश्चर तथा राहु यह दोनों कुम्भराशिके स्वामी हैं। जिस एकही स्थानपर मङ्गल और केतु तथा शनैश्चर और राहु दोनों एक साथ स्थित हों उस स्थानपर्यन्त गणना करनेसे वृश्चिक और कुम्भराशिकी दशाके वर्ष मिलते हैं, और यदि दोनोंही मिलकर अपने राशिपर स्थित हों तब बारह वर्षकी दशा होती है। दिनाथस्थान अर्थात् वृश्चिक और कुम्भराशिके विषयमें और विशेष निर्णय लिखतेहैं कि—यदि दोनों स्वामियोंमें एक तब अपने स्थानपर स्थित हो और दूसरा ग्रह अन्यस्थानमें स्थित हो तब अपने स्थानमें स्थित ग्रहानुसार दशाका ग्रहण न करके अन्य स्थानमें स्थित ग्रहपर्यन्त गणना करके चरदशाके वर्ष जानना चाहिये। और यदि दोनों ग्रह अपने स्थानको छोड़कर, भिन्न भिन्न स्थानमें स्थित हों तब उन दोनोंमें जो बली हो, उसके स्थानपर्यन्त गणना करनेसे चरदशाके वर्ष मिलते हैं। और यदि अपने स्थानको छोड़कर भिन्न स्थानमें स्थित होकरभी दोनों समान हों तब दोनोंमें जो राशिवलके अनुसार बली हो उसके स्थानपर्यन्त गणना करनेसे चरदशाके वर्ष मिलते हैं। राशिवल दिसलातेहैं—चरराशिकी अपेक्षा स्थिरराशि बलवान् होता है, स्थिरराशिकी अपेक्षा द्विःस्वभावराशि बलवान् होता है। इसीके अनुसार ज्ञनराशियोंमें स्थित ग्रहोंकाभी वयव्य और निर्वलत्व जानना चाहिये। यदि दोनों ग्रहोंका राशिवलभी समान होय तब जिस ग्रहके अधिक वर्ष आते

हों उसके स्थानपर्यन्त गणना करके चर दशाके वर्ष ग्रहण करै । और यदि दोनों ग्रहोंमें एक अपने उच्चस्थानमें स्थित हो और दूसरा अन्यस्थानमें स्थित हो तौ उच्चग्रहके स्थानपर्यन्त गणना करके दशाके वर्ष ग्रहण करै । और दोनों ग्रहोंमें एक अपने उच्चस्थानमें स्थित हो और दूसरा बहुत वर्षोंवाला हो तबभी उच्चग्रहके स्थानपर्यन्त गणना करके दशाके वर्ष ग्रहण करे ॥ २८ ॥

आगे फलविशेष जाननेके निमित्त राशियोंका आरूढ़नामक द्वितीयपदका विषय लिखते हैं—

।यावदीशाश्रयं पदमृक्षणांम् । २९ ।

अर्थ—जिस राशिका आरूढ़पद जाननेकी अपेक्षा हो उस राशिसे प्रारंभ करके उस राशिका स्वामी जिस स्थानपर स्थित हो उस स्थानपर्यन्त गणना करनेसे जो संख्या लब्ध हो स्वामीके स्थानसे उतनीही संख्यावाला स्थान उक्तराशिका आरूढ़पद होता है. जैसे मेषका आरूढ़पद जानना हो और मेषका स्वामी मङ्गल चर्कमें स्थित हो तब मेषसे तृतीयस्थान चर्क हुआ इसकारण उपरोक्त रीतिके अनुसार स्वामीके ग्रह चर्कसे तीन ग्रह और गिना तब तुला राशि आई यही मेषराशिका आरूढ़पद होगा ॥ २९ ॥

अब आरूढ़पदके उदाहरणरूप दो सूत्र लिखते हैं:—

स्वस्ये दाराः । ३० ।

+ कि-हीका ऐसा मत है कि-इन दोनों सूत्रोंका विशेष प्रयोजन होनेसे आचार्यका ऐसा तात्पर्य विदित होता है कि-
‘‘दाराः’’ विचारणीया ॥

अर्थ—यदि लग्नसे स्वस्थ (चतुर्थ) स्थानपर लग्नका स्वामी स्थित हो तब सप्तमस्थान लग्नराशिका आरूढ़पद होगा ॥ ३० ॥

१-२३- सुतस्थे जन्म ॥ ३१ ॥

अर्थ—यदि लग्नका स्वामी लग्नसे सुत (सप्तम) स्थानपर स्थित हो तब लग्नराशिही लग्नराशिका आरूढ़पद होगा ॥ ३१ ॥

अब राशि और भावोंके वर्णादि लिखते हैं—

सर्वत्र सवर्णा भावा राशयश्च ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस ग्रन्थमें सर्वत्र भाव और राशि एक आदि संख्याके जनानेवाले 'क.ट.प.य' आदि वर्णोंसे जानी जाती हैं. **शंका**—आगे कहेहुये "सिद्धमन्यतु" इस सूत्रके अनुसार शिवताण्डवादि अन्य ग्रन्थोंसे 'क.ट.प.य' आदि वर्णोंके अनुसार संख्या प्रसिद्धही है फिर इस सूत्रका क्या प्रयोजन है ? इसका **समाधान**—करनेके निमित्त इस सूत्रका अन्यरीतिसे व्याख्यान करते हैं ।—इस जातक शास्त्रमें (सर्वत्र भाव और राशि वर्णद राशिसे युक्त होते हैं) वर्णद राशिके जाननेकी रीति वृद्धकारिकाके अनुसार लिखते हैं—

ओजलग्नप्रसृतानां मेपादेर्गणयेत्क्रमात् ।

युग्मलग्नप्रसृतानां मीनादेरपसव्यतः ॥

मेपमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत्सुधीः ।

× चतुर्थस्थासे खिद्योका विचार करै और "सुतस्थे जन्म" श्रुतु ॥ सप्तमस्थानसे आताके जन्मका विचार करै । नीलकण्ठ ऐसा देखते हैं यह कहना ठीक नहीं ॥

तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः परम् ॥

पुंस्त्वेन स्त्रीतयावैते सजातीये उभे यदि ।

तर्हि संख्ये योजयित वैजात्ये तु वियोजयेत् ॥

मेघमीनादितः पश्चाद्योराशिः स तु वर्णदः ।

अर्थ—मेघ, मिथुन इत्यादि राशियोंमें यदि जन्मलग्न हो तौ मेघ, वृष इत्यादि क्रमसे गणना करे और यदि वृष, कर्क इत्यादि समराशियोंमें जन्मलग्न होय तौ मीन, कुम्भ इत्यादि उलटी रीतिसे जन्मलग्नपर्यन्त गणना करनेसे जो अङ्क मिले और उक्तरीतिके अनुसार होरालग्नपर्यन्त गणना करनेसे जो अङ्क मिले इन दोनों अङ्कोंको यदि जन्मलग्न और होरालग्न दोनों स्त्रीही हों या दोनों पुरुषही हों तौ जोड़े और यदि जन्मलग्न और होरालग्नमें एक स्त्री हो एक पुरुष हो तौ घटाव करे. तब जो अङ्क सिद्ध होय उसमें बारहका भाग देय जो शेष बचे, जन्मलग्नसे गिनकर उतनीही संख्या वाला स्थान जन्मलग्नका वर्णद होता है ॥

इसीप्रकार सम्पूर्णराशियोंके और भागोंके वर्णद जानें और इसीप्रकार भावलग्नके वर्णद जानें । अब भावलग्न और होरालग्नके जाननेकी रीति बृद्धकारिकाके अनुसार लिखतेहैं—

सूर्योदयं समारभ्य घटिकानान्तु पञ्चकम् ।

प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नंतथैव च ॥

तथा सार्धं द्विघटिकामितात्कालाद्विलग्नभात् ।

* वर्णदकी रीतिसे गुल्किभी बनता है, जिसप्रकार चरदशाके वर्ष जाननेकी रीति वही है उसीप्रकार वर्गराशियोंकी दशाके वर्ष भी जानें ॥

प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ॥

अर्थ—सूर्योदयसे लेकर जन्मकालपर्यन्त जितने इष्ट-
दण्ड हों उनमें पाँचका भाग देय जो छवि आवे उसको
राशि जानै जो शेष बचे उसको बीससे गुणा करके फिर
पाँचका भाग देय, जो छवि हो उसको अंश मानै शेषसे
कला बिकला आदि जानै । ऊपर छापानुआ राशि जितनी
संख्यावाला हो लग्नसे उतनी संख्यापर जो स्थान हो वही
भावलग्न कहाता है । और होरालग्नकी रीतिमें भावलग्नकी
अपेक्षा इतनीही विशेषता है कि—इष्टदण्डोंमें ढाईका भाग
दियाजाता है+ ॥

अब प्राचीन कारिकाके अनुसार वर्णद राशिपोंका फल
कहते हैं—

पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके ।

यदि स्यात्तर्हि तद्राशिपर्यन्तं तस्य जीवनम्

रुद्रशंखे तथैवायुर्मरणादि निरूप्यते ।

तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसङ्गमे ॥

वर्णदात्सप्तमाद्राशेः कलत्रादि विचिन्तयेत्

एकादशादग्रजन्तु तृतीयात्तु यवीयसम् ॥

पञ्चमे तनुजं विद्यान्मातरं तु सूर्यपञ्चमे ।

पितुस्तु नवमान्मातुः पञ्चमाद्वर्णदस्य तु ॥

शुलराशिदृशायां वै प्रवलायामरिष्टकम् ।

+ इतनी औरभी विशेषता है कि यदि जन्मलग्न विषम हो तो सूर्य
स्थित राशिसे लेकर शुक्रराशिकी संख्या जहाँ समाप्तहो वह होरा
ग्र होता है और यदि जन्मलग्न सम हो तो जन्मलग्नसे लेकर उत्त
राशिकी संख्या जहाँ समाप्त हो वह हारलग्न होता है ॥

अर्थ—जिसके वर्णद राशिके त्रिकोण (पञ्चम और नवम) स्थानमें पापग्रहकी दृष्टि हो या पापग्रहका योग हो उसी राशिकी दशापर्यन्त जीवन होता है। और रुद्रशूलमेंभी आपु और मरणका विचार किया जाता है और वर्णद राशिके त्रिकोणस्थानमें यदि पापग्रहोंका सङ्गम हो तबभी उपरोक्त फल होता है। वर्णद राशिसे सप्तम राशिसे स्त्रीआदिका विचार करे, और वर्णदराशिसे एकादशस्थानके द्वारा ज्येष्ठ भ्राताका विचार करे, तथा वर्णदराशिसे तृतीयस्थानके द्वारा छोटे भ्राताका विचार करे। पञ्चमस्थानमें पुत्रका विचार करे, और चतुर्थपञ्चममें माताका विचार करे, वर्णद राशिसे पञ्चमस्थानकी अपेक्षा प्रबलशूलदशामें माताको अरिष्ट जाने और वर्णद राशिसे नवमस्थानकी अपेक्षा प्रबल शूलदशामें पिताका अरिष्ट जाने ॥ ३२ ॥

उपरोक्त सूत्रके विषयमें ग्रहोंके वर्णदोंका निषेध दिखानेहैं

न ग्रहाः । ३३ ।

अर्थ—“सर्वत्र सवर्णांतावा राशयश्च” इस सूत्रकी जो दो मकारसे व्याख्या लिख आये हैं तहाँ प्रथमपक्षमें जो अर्थ किया है कि भाव और राशिसंख्याबोधक ‘क.ट. प.य’ आदि अक्षरोंसे जाने जातेहैं। ऐसा कहा है। उस पक्षमें इस सूत्रका ऐसा अर्थ करना कि—ग्रहसंख्याबोधक ‘क.ट. प.य’ आदि वर्णोंसे नहीं जानेजाते हैं। और दूसरे पक्षमें अर्थ किया है कि—भाव और राशिवर्णद राशिपोंसे होतेहैं ऐसा कहा है उस पक्षमें इस सूत्रका ऐसा अर्थ कि ग्रहोंके वर्णद नहीं होने हैं ॥ ३३ ॥

अब अन्तर्दशाका विभाग लिखते हैं—

यावद्विवेकमावृत्तिर्भानाम् । ३४ ।

अर्थ—अन्तर्दशा जाननेके निमित्त बारहों राशियोंके १४४⁺ एकसौ चौवालीस भाग करे अर्थात् चर, स्थिर, द्वि-
स्वभाव इन बारहों राशियोंके विषे हर एक राशिका बारहवाँ
भाग एक एक राशिकी अन्तर्दशाका भोग होता है। तहाँ
अपनी दशामें प्रथम अपनीही अन्तर्दशाका भोग होता है।
जैसे मेषराशिकी दशामें प्रथम बारहवाँ भाग मेषकीही अन्त-
र्दशा होगी, द्वितीयभाग वृषकी अन्तर्दशा होगी, तृतीयभाग
मिथुनकी अन्तर्दशा होगी, इत्यादि। और वृषकी दशाके
विषे प्रथम बारहवाँ भाग वृषकीही अन्तर्दशा होगी, द्वितीय
भाग मिथुनकी अन्तर्दशा होगी इत्यादि रीतिही बारहों रा-
शियोंकी दशामें अन्तर्दशा जाननेकी है। परन्तु यह रीति
यदि विपमराशिमें जन्मलग्न हो तौ होती है और समराशिकी
जन्मलग्नवालेकी अन्तर्दशामें जो विशेषता है सो वृद्धकारि-
काके अनुसार दिखाते हैं—

“लग्नयुग्मं यदा तर्हि सम्मुखं तस्य चादिभम्”

अर्थ—यदि समराशिमें जन्म होय तौ जिसकी दशामें
अन्तर्दशा जानना हों उसकी अन्तरदशाका प्रथम बारहवें
भागमें भोग होता है और द्वितीय बारहवें भागमें उसके आ-
दिकी राशिकी अन्तर्दशाका भोग होता है, जैसे वृषराशिमें
जन्मलग्न होय तौ वृषराशिका प्रथम बारहवाँ भाग वृषरा-
शिकी अन्तर्दशा होती है, और दूसरा भाग मिथुनकी अन्त-

+ “यावद्विवेकमावृत्तिर्भानाम्” इस सूत्रमें पढ़े हुए “द्विवेक” +
“ए.प.य” आदि वर्णोंको सख्याके अनुसार एकसौचौवाली
बोध होता है ॥

र्दशा न होकर मेषकी अन्तर्दशा होती है, तृतीयभाग मिथुनकी अन्तर्दशा होती है, चतुर्थभाग कर्ककी अन्तर्दशा होती है इत्यादि । इसप्रकार हर एक राशिके बारह भाग होनेसे अन्तर्दशा जाननेके निमित्त बारहों राशियोंके १४४ भाग होते हैं ॥ ३४ ॥

इस शास्त्रमें आगे होरा और द्रेष्काण आदिकी अपेक्षा होयगी इसकारण ग्रन्थान्तरप्रसिद्ध होराआदि ग्रहण करना यह बातें लिखते हैं—

होरादयः सिद्धाः । ३५ ।

अर्थ—होरा द्रेष्काण आदि शास्त्रान्तरप्रसिद्ध मेष-आदि गणनाके अनुसार जाने । वहाँ वृद्धकारिकाओंके अनुसार होरा, द्रेष्काण, सप्तांशक नवांशक और द्वादशांशक जाननेकी रीति लिखते हैं—

राशेरद्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृताः ।

मेपादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ॥

अर्थ—एक राशिके अर्द्धभागका नाम होरा है, अर्थात् एक राशिमें दो होरा होते हैं. इस प्रकार बारहों राशियोंमें चौबीस २४ होरा होते हैं. मेपादि राशियोंकी दो दो बार गिनती होती है ॥

रात्रिभागा द्रेष्काणास्ते च पट्त्रिंशदीरिताः ।

परिवृत्तित्रयं तेषां मेपादेः क्रमशो भवेत् ॥

अर्थ—एक राशिके तीन द्रेष्काण होते हैं अर्थात् एक राशिके तृतीयांशका नाम द्रेष्काण है. इसप्रकार बारहों राशियोंमें तीस ३६ द्रेष्काण होते हैं. मेपादि राशियोंकी त्रिक गिनती होती है ॥

सप्तमांशकास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः ।

युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमक्षाधिनायकात् ॥

अर्थ—एक राशिमें सात सप्तमांश होते हैं, परन्तु इतनी विशेषता है कि यदि विषम राशि हो तौ उसका प्रथम सप्तमांश उसही राशिका होताहै, फिर दूसरे राशिका होताहै। इसीप्रकार तृतीय आदिका होताहै। और यदि समराशिका हो तौ उलटा क्रम करना चाहिये अर्थात् उसका पहला सप्तमांश उससे सातवें राशिका होताहै, दूसरोंका इसी क्रमसे इत्यादि ॥

नवांशेशाश्चरे तस्मात्स्थिरे तन्नावमादितः ।

उभये तत्पञ्चमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणैः ॥

अर्थ—एक राशिमें नौ ९ नवमांश होतेहैं परन्तु इतनी विशेषता है कि—चर राशि होय तौ प्रथम नवमांश उसही राशिका होताहै; फिर दूसरेका इत्यादि। और यदि स्थिर राशि हो तौ उसका प्रथम नवमांश उससे नवमें राशिका होताहै फिर इसीक्रमसे जानना। और यदि द्विःस्वभावराशिका नवमांश होय तौ प्रथम नवमांश पाँचवें राशिका होताहै। फिर इसी क्रमसे औरोंका ॥

“द्वादशांशस्य गणानां तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत्”

अर्थ—एक राशिके बारह द्वादशांश होतेहैं। प्रथम द्वादशांश उसही राशिका होताहै, फिर इसी क्रमसे औरोंका जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

इति श्रीजैमिनीये जातकशास्त्रे पण्डितरामस्वरूपविर-
चितायां स्वरूपकामिधायी भाषाटीकायां ग्रन्थ-

भाष्यापस्य प्रथमः पादः समाप्तः ।

अथ द्वितीयः पादः ।

अब आत्मकारकके आश्रयीभूत नवांशकको अवलम्बन करके फलोंके कहनेका प्रारम्भ करतेहैं—

अथ स्वांशोन्नहाणाम् । १ ।

अर्थ—सूच्यादि ग्रहोंके विषे आत्मकारकाश्रित जो नवमांश हो अर्थात् पूर्वोक्तरीतिके अनुसार जानाहुआ आत्मकारक जिस राशिके नवमांशमें स्थित हो उस नवमांशसे फलका विचार करना चाहिये ॥ १ ॥

आत्मकारकाश्रित मेषादिनवमांशोंके फल—

पञ्च मूपिकमार्जाराः । २ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मेषके नवमांशमें हो उसको चूहा और गिलावके द्वारा दुःखकी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

तत्र चतुष्पादः । ३ ।

अर्थ—जिसपुरुषका आत्मकारक वृषके नवमांशमें हो उसको चार चरणवालोंके द्वारा लाभ होता है ॥ ३ ॥

* इस सूत्रमें 'तत्र' इस सर्वनामके द्वारा पूर्वसूत्रका परामर्श होनेके कारण दोनों सूत्रोंकी एकवाक्यता करके ऐसा अर्थ करना चाहिये कि "जिसका आत्मकारक मेषके नवमांशमें स्थित हो उस पुरुषको चूहा और गिलावसे दुःखकी प्राप्ति होती है और चार चरणवाले पशुओंके द्वारा सुखप्राप्ति होती है" ऐसा दोनों सूत्रोंका 'इष्ट' अर्थ होना चाहिये फिर अलग अर्थ करनेमें क्या प्रमाण है? तहां कहतेहैं वृद्धकारिकाही प्रमाण है "वृषतौल्यंशकगते तस्मिन्वाणिज्यवान्भवेत् । मेषासंशंकगते ब्रूयान्मूपकदंशनमिति" ॥

मृत्यौ कण्डूः स्थौल्यञ्च । ४ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मिथुनके नवमांशकमें स्थित हो उसके शरीरमें कण्डूरोग होताहै और शरीर स्थूल होजाताहै ॥ ४ ॥

दूरे जलकुप्तादिः । ५ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक कर्कके नवमांशमें ही उस पुरुषको जलसे भय अर्थात् कूप नदीआदिमें डूबना फल कहना तथा कुष्ठआदिरोगभी होताहै ॥ ५ ॥

शेपाः श्वापदानि । ६ ।

—अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक सिंहके नवमांशकमें स्थित हो उसको श्वापदों (एजेवाले सिंह, रीउ, कुङ्कुगदि) से भय होताहै ॥ ६ ॥

मृत्युवज्ज्यायाम्निकणश्च । ७ ।

जिस पुरुषका आत्मकारक कन्याके नवमांशकमें स्थित हो उसके शरीरमें कण्डू (खुजली) होतीहै, शरीर स्थूल होताहै तथा अग्निसे भयभी होताहै ॥ ७ ॥

लाभे वाणिज्यम् । ८ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक तुलाके नवमांशकमें स्थित हो उसको व्यापारके द्वारा लाभ होताहै ॥ ८ ॥

+ 'मृ'यु' शब्दसे 'क ट प य' आदि वर्णोंकी सख्याके अनुसार मिथुनराशिका बोध होताहै । * 'दूरे' शब्दसे 'क ट प य' आदि वर्णोंकी सख्याके अनुसार कर्कराशिका लाभ होताहै * 'शेप' शब्दसे सिंहराशिका बोध होताहै । * 'जापा' शब्दसे कन्याराशिका बोध होताहै + 'लाभ' शब्दसे तुलाराशिका बोध होताहै ।

अत्र जलसरीस्तृपास्तन्यहानिञ्च । ९ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक वृश्चिकके नवमांशकमें स्थित हो उसको जल और सर्पसे भय होता है, माताका दुग्ध सूखजाता है ॥ ९ ॥

समेवाहनादुच्चाच्च क्रमात्पतनम् । १० ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक धनके नवमांशकमें स्थित हो वह पुरुष सवारीपरसे और ऊंचे स्थानपरसे गिरता है ॥ १० ॥

जलचरखेचरखेटकण्डूग्रन्थयश्चैरिप्फे । ११ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मकरके नवमांशकमें स्थित हो उस पुरुषको जलचर कहिये जलके जीवोंसे खेचर कहिये आकाशके पक्षियोंसे तथा ग्रहोंसे लाभ होता है, कण्डू रोगभी होता है ॥ ११ ॥

तडागादयो धर्मैः । १२ ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक कुम्भके नवमांशकमें स्थित हो वह पुरुष तालाब धावड़ी कूप आदिका बनवाने-वाला होता है ॥ १२ ॥

उच्चै धर्मनित्यता कैवल्यञ्च । १३ ।

+ 'अत्र' शब्दसे वृश्चिक राशिका बोध होता है । * 'सम' शब्दसे धन राशिका बोध होता है । * 'रिप्फ' शब्दसे मकर राशिका बोध होता है । * 'धर्म' शब्दसे कुम्भ राशिका बोध होता है । + 'उच्च' शब्दसे मीन राशिका बोध होता है ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक मीन राशिके नवांशकमें हो उस पुरुषकी धर्ममें निष्ठा रहवोहै और युक्तिको प्राप्त होताहै । वृद्धकारिकामें जो इसकी अपेक्षा आत्मकारक अधिक फल कहा है सो लिखते हैं—

शुभराशौ शुभांशे वा कारकांशे धनवान्भवेत् ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक शुभ राशिकमें या शुभ-नवांशमें स्थित हो वह धनी होताहै ।

तदंशकेन्द्रेषु शुभे राजा नूनं प्रजायते ॥

अर्थ—जिस शुभ नवमांशमें आत्मकारक ग्रह स्थित हो उसही आत्मकारक ग्रहके नवमांश केन्द्रस्थानमें शुभग्रह स्थित हो तौ उस पुरुषको राजयोग होताहै । अर्थात् वह पुरुष राजा होताहै ॥

कारके शुभराश्यंशे लग्नांशस्थे शुभग्रहे ।

उपग्रहस्य पाश्चात्ये स्वोच्चस्वर्क्षशुभक्षणे ॥

पापदृग्योगरहिते कैवल्यं तस्य जायते ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक ग्रह शुभराशि और शुभनवमांश तथा लग्नके नवमांशमें शुभग्रहके साथ एकाहो या आत्मकारक ग्रहके पीछे राहु केतु (उपग्रह) स्थित हों अथवा अपने उच्चस्थानमें स्थित हो अपनी राशिपर स्थित हो शुभराशिपर स्थित हो अथवा पापदृष्टि या पापग्रहका साथ न हो ऐसे आत्मकारकवाले पुरुषको मोक्षप्राप्ति होतीहै ॥

मिश्रे मिश्रं विजानीयाद्विपरीते विपर्ययः ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक ग्रहको पापग्रह और शुभग्रह दोनोंका योग हो उसको स्वर्गप्राप्ति होतीहै,

और यदि केवल पापग्रहमात्रकाही योग हो या दृष्टि हो अथवा सप्त हो तौ मुक्ति न हो न स्वर्ग हो किन्तु नरकादि दुःखकी माति होतीहै ।

चन्द्रमृगवारवर्गस्थे कारके पारदारिकः ।

अर्थ—जिस पुरुषका आत्मकारक ग्रह चन्द्रमा शुक्र और मङ्गलके वर्गमें स्थित हो वह पुरुष परस्त्रीगामी होताहै ॥ १३ ॥

अब आत्मकारक ग्रहके नवमांशमें ग्रहोंके स्थिति आदिके अनुसार फल कहते हैं—

तत्र रवौ राजकार्यपरः । १४ ।

जिस पुरुषके आत्मकारक ग्रहके नवमांशमें सूर्य स्थित हो वह पुरुष राजकार्यका करनेवाला होताहै अर्थात् किसी राजाके कार्यको करताहै । १४ ।

आत्मकारकके नवमांशमें पूर्ण चन्द्रमा और शुक्रकी स्थितिका फल लिखतेहैं—

पूर्णेन्दुशुक्रयोर्भोगी विद्याजीवी च । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें पूर्ण चन्द्रमा और शुक्र स्थित हों वह पुरुष विषयोंके सुखको भोगताहै और विद्यासे आजीविका करताहै ॥ १५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें मङ्गलकी स्थितिका फल लिखतेहैं—

धातुवादी कौन्तायुधो वह्निजीवी

च भौमे । १६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें मङ्गल स्थित हो वह पुरुष सुवर्ण आदि धातुकी शुद्धाशुद्धिको जाननेवाला होता है, रसायन जाननेवाला होता है, वह शस्त्रको धारण करता है, भाङ्ग भट्टी आदिके द्वारा अग्निसे आजीविका करता है ॥

आत्मकारकके नवमांशमें बुधकी स्थितिका फल कहते हैं—

वणिजस्तन्तुवायाः शिल्पिनो व्यव-

हारविदश्च सौम्ये । १७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें बुध स्थित हो वह पुरुष वैश्य या जुलाहा या बढ़ई आदि कारीगरका काम करनेवाला और संसारके व्यवहारोंका जानेनेवाला होता है ॥ १७ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें बृहस्पतिकी स्थितिका फल कहते हैं—

कर्मज्ञाननिष्ठा वेदविदश्च जीवे । १८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें बृहस्पति स्थित हो वह पुरुष वेदविहित अग्निष्टोम (यज्ञ) आदि कर्मकाण्डका जाननेवाला उपनिषद् ब्रह्म सूत्रादि प्रतिपादित ज्ञानको ग्रहण करनेवाला तथा वेदवेत्ता होता है ॥ १८ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित शुक्रका फल लिखते हैं—

राजकीयाः कामिनः शतेन्द्रियाश्च

शुके । १९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें शुक्र

स्थित हो वह पुरुष किसी राजकार्यका अधिकार पाता है, अनेक स्त्रियोंसे भोगविलासकी इच्छा करनेवाला होता है, और उस पुरुषकी इन्द्रियोंकी वृत्ति सौ वर्षपर्यन्त शिथिल नहीं होती है अर्थात् वह पुरुष सौ वर्षपर्यन्त जीता है ॥ १९ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित शनिका फल लिखते हैं—

प्रसिद्धकर्माजीवः शनौ । २० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक नवमांशमें शनि स्थित हो वह पुरुष संसारमें प्रसिद्ध कर्मके द्वारा आजीविका करता है ॥ २० ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित राहुका फल लिखते हैं—

धानुष्काश्चोराश्च जाङ्गलिका लोहय-

न्त्रिणश्च राहौ । २१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें राहु स्थित हो वह पुरुष धनुष बनानेवाला या धारण करनेवाला होता है, चोर होता है, अथवा वनमें रहनेवाला और ताला आदि लोहेका यन्त्र बनानेवाला होता है ॥ २१ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका फल लिखते हैं—

गजव्यवहारिणश्चोराश्च केतौ । २२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें केतु स्थित हो वह पुरुष हस्तिपोंका व्यवहार करता है, और चोरी करनेमें तत्पर रहता है ॥ २२ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें एक साथ पड़ेहुए सूर्य और राहुका फल लिखते हैं—

रविराहुभ्यां सर्पनिधनम् । २३ ।

१ अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें सूर्य और राहु, सङ्ग स्थित हों वह पुरुष सर्पके द्वारा मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें एक सङ्ग स्थित सूर्य राहुके फलमें विशेषता लिखते हैं—

शुभदृष्टे सन्निवृत्तिः । २४ ।

अर्थ—आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य राहुको यदि शुभग्रह देखता हो तो उस पुरुषकी सर्पसे मृत्यु नहीं होती है ॥ २४ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य राहुको शुभग्रहका योग होनेपर विशेषता लिखते हैं—

शुभमात्रसंयोगाज्जाङ्गलिकः । २५ ।

अर्थ—आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य और राहुको यदि शुभमात्र ग्रहका योग होय तो वह पुरुष विषवैद्य अर्थात् सर्पके विषको दूर करनेकी विद्याका जाननेवाला होता है ॥ २५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित राहु सूर्यको मङ्गलकी दृष्टि होय तो विशेष फल—

कुजमात्रदृष्टे गृहदाहकोऽग्निदो वा । २६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य और राहुको यदि मङ्गलमात्र देखता होय तो वह पुरुष अपने घरको जलादेता है अथवा पराये घरमें अग्नि देता है २६

× यही मात्रशब्द इसकारण दिया है कि शुभग्रहमात्रकीही दृष्टि हो पापग्रहका दृष्टि न होय ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित सूर्य और राहुको शु-
ककी दृष्टि होय तो विशेष फल—

शुक्रदृष्टेर्नदाहः । २७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित
सूर्य और राहुको शुक्र देखता होय तो वह पुरुष अपने
गृहमें अग्नि नहीं देता है परगृहमें अग्नि देता है ॥ २७ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित राहु केतुको बृहस्पतिकी
दृष्टि होय तो विशेष फल—

गुरुदृष्टेस्त्वासमीपगृहात् । २८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित
सूर्य और राहुको गुरु देखता हो तो वह अपने गृहको छो-
ड़कर समीपके सम्पूर्ण गृहोंको जलादेता है ॥ २८ ॥

आत्मकारकके नवमांशको मुलिकका योग होनेपर फल
लिखते हैं—

सगुलिके विपदो विपहतो वा । २९ ।

अर्थ—जिसके आत्मकारकके नवमांशको मुलिक योग
हो वह पुरुष अन्य पुरुषको विप देता है अथवा अपने आप
विपभक्षण करके मरजाता है । मुलिकके जाननेकी रीति बृ-
ह्मकारिकाके अनुसार लिखते हैं—

रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते ।

दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद्रणयेत्क्रमात् ॥

अष्टमोशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ।

रात्रिमप्यष्टधा भक्त्वा वारेशात्पञ्चमादितः ॥

गणयेदष्टमः खण्डो निष्पत्तिः परिकीर्तितः ।

शन्यंशे गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशे यमघण्टकः ॥

भौमांशे घृतपुरादिष्टो रव्यंशे कालसंज्ञकः ।

सौम्यांशेऽष्टप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः ॥

अर्थ—सूर्यसे लेकर शनैश्चरपर्यन्त गुलिक आदि संज्ञा कहते हैं—दिनके आठ भाग करै, उस दिनका जो स्वामी हो उसको पहले भागका स्वामी जानै फिर इसी क्रमसे शेष भागोंके स्वामी होतेहैं । उसमें शनैश्चरका भाग गुलिक कहलाता है और आठवें भागका कोई स्वामी नहीं होताहै । (जैसे रात्रिके आठ भाग किये, उसमें प्रथम भागका स्वामी सूर्य (वर्तमान वारेश) होयगा, द्वितीय भागका स्वामी चन्द्रमा तृतीय भागका स्वामी मङ्गल, चतुर्थ भागका स्वामी बुध, पञ्चम भागका स्वामी बृहस्पति, षष्ठ भागका स्वामी शुक, सप्तम भागका स्वामी शनैश्चर, अष्टम भाग शन्य, यहां शनिका सप्तम भाग गुलिक कहलाता है, इस प्रकार रात्रिका सप्तम भाग गुलिक होताहै. सोमका षष्ठ भाग गुलिक होताहै. मङ्गलका पञ्चम भाग गुलिक होताहै. बुधका चतुर्थ भाग गुलिक होताहै. बृहस्पतिका तृतीय भाग गुलिक होताहै. शुकका द्वितीय भाग गुलिक होताहै. शनिका प्रथम भाग गुलिक होताहै. रात्रिकेभी आठ भाग करै, इतनी दिनके गुलिककी अपेक्षा विशेषता होतीहै कि उस दिनका जो स्वामी हो उसमें पाँचवों वारेश प्रथम भागका स्वामी होताहै, इत्यादि क्रमसेही अन्य भागोंके स्वामीभी होतेहैं । शनैश्चरका भाग गुलिक कहलाता है, रात्रिकेभी अष्टम भाग निगीश होताहै ॥ और रात्रिके तथा दिनमेंभी आठों भागोंमेंसे शनिका भाग

गुलिक कहलाता है. रात्रिमें रविवारके दिन तृतीय खण्ड गुलिक कहलाता है. सोमका द्वितीय खण्ड. मङ्गलका प्रथम खण्ड. बुधका सप्तम खण्ड. बृहस्पतिका पष्ठ खण्ड. शुक्रका पञ्चम खण्ड. शनिका चतुर्थ खण्ड गुलिक कहलाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण दिन और रात्रियोंमें शनिका भाग गुलिक कहलाता है. बृहस्पतिका भाग यमखण्ड कहलाता है. मङ्गलका भाग मृत्यु कहलाता है. रविका भाग काल कहलाता है. बुधका भाग अष्टमहरक कहलाता है। अपने २ देशकी लग्नके प्रमाणानुसार गुलिकखण्डपर्यन्त लग्न स्पष्ट करके उसमें जो अंश आवै वही गुलिक कहलाता है ॥ २९ ॥

आत्मकारकके नवमांशके सहित गुलिक हो उसका फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ चौरापहतधनश्वौरो वा । ३० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक ग्रहका नवमांश गुलिकसहित हो और उसको चन्द्रमा देखता हो तो उस पुरुषके धनकी चोरी होजाती है अथवा वह पुरुष अपने आप रोर होता है ॥ ३० ॥

हो आत्मकारकके नवमांशके सहित गुलिक हो और उसको बुध देखता होय तहाँ फल कहते हैं—

बुधमात्रदृष्टे बृहद्बीजः । ३१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारक नवमांश गुलिकसहित हो और उसको बुधके सिवाय अन्य ग्रह न देखता होय तो वह पुरुष दीर्घ अण्डकोशवाला होता है अर्थात् उसके पोते बढ जाते हैं ॥ ३१ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका फल लिखते हैं—

तत्र केतौ पापदृष्टे कर्णच्छेदः

- कर्णरोगो वा । ३२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारककी नवमांशकुण्डलीमें स्थित केतुको पापग्रह देखते हों उस पुरुषका कान कट जाता है अथवा कानमें रोग होता है ॥ ३२ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका विशेष फल लिखते हैं—

शुक्रदृष्टे दीक्षितः । ३३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारककी नवमांशकुण्डलीमें स्थित केतुको शुक्र देखता हो वह पुरुष यज्ञ आदिकी दीक्षा धारण करनेवाला होता है ॥ ३३ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका और विशेष फल—

बुधशनिदृष्टे निर्वीर्यः । ३४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको बुध और शनिधर दोनो देखते हों वह पुरुष नपुंसक होता है ॥ ३४ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुका दृष्टिबशतः और विशेष फल लिखते हैं—

बुधशुक्रदृष्टे पौनःपुनिको दासीपुत्रो वा २५

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको बुध और शुक्र देखते हों या वह पुरुष एकही पत्नीके

वारम्बार कहनेवाला (पुनरुक्तवक्ता) होता है. अथवा दा-
सीका पुत्र होता है ॥ ३५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको शनिदृष्टिका फल—

शनिदृष्टे तपस्वी प्रेष्यो वा । ३६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको अन्य ग्रहोंकी दृष्टि होनेपरभी यदि शनि देखता होय वह पुरुष तप करनेवाला होता है, और दूत सेवक आदिका काम करता है ॥ ३६ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें स्थित केतुको शनिमात्रकी दृ-
ष्टिका फल—

शनिमात्रदृष्टे संन्यासाभासः । ३७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारककी नवमांशकुण्डलीमें स्थित केतुको शनिके सिवाय अन्यग्रहोंकी दृष्टि न होय केवल शनिही देखता होय तब वह पुरुष संन्यासी होता है अर्थात् वह पुरुष कारणवश केवल संन्यासियोंकेसे वेष बना लेता है शास्त्रके अनुसार संन्यासियोंके कर्म नहीं करता है ३७

आत्मकारकके नवमांशपर सूर्य्य शुक्रकी दृष्टिका फल
लिखते हैं—

तत्र रविशुक्रदृष्टे राजप्रेष्यः । ३८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशपर सूर्य्य और शुक्रकी दृष्टि पड़ती हो वह पुरुष राजाका दूत सेवक आदि होता है ॥ ३८ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशके दशमांशको अबलम्बन कर फल लिखते हैं—

तहाँ प्रथम बुधका फल—

रिप्फे बुधे बुधदृष्टे वा मन्दवर्त् ॥ ३९ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे दशम नवमांशमें बुध स्थित हो अथवा बुधकी दृष्टि हो तो वह पुरुष “प्रसिद्धकर्मजीवः शनौ” इस सूत्रके अनुसार फलकी प्राप्ति होता है, अर्थात् संसारमें प्रसिद्धकर्मके द्वारा आजीविका करता है ॥

तहाँ शुभग्रहकी दृष्टिका फल— १ -

शुभदृष्टे स्थेयः ॥ ४० ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे दशम नवमांशमें बुधको छोड़कर, अन्य किसी शुभग्रहकी दृष्टि होय तो वह पुरुष स्थिरस्वभाव होता है ॥ ४० ॥

तहाँ आत्मकारकके दृष्टिसे बुधस्पतिकी दृष्टिका फल—

रवौ गुरुमात्रदृष्टे गौपालः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे दशम नवमांशमें सूर्य स्थित हो और अन्य ग्रहोंको छोड़कर केवल बुधस्पतिकी दृष्टि हो तो वह पुरुष गौओंकी रक्षा करनेवाला होता है ॥ ४१ ॥

आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमा और शुकरी दृष्टि तथा योगवा फल निम्नलिखित हैं—

दारे चन्द्रशुकहम्योगात्पासादः ॥ ४२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमा और शुकरी दृष्टि हो अथवा योग

हो तौ वह पुरुष महलोंके स्थानवाला होताहै ॥ ४२ ॥

तहाँ उच्चस्थानके ग्रहकी स्थितिका फल लिखते हैं—

उच्चग्रहेऽपि । ४३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चौथे नवमांशमें उच्च स्थानका ग्रह स्थित हो वह पुरुषभी महलोंके स्थानवाला होताहै ॥ ४३ ॥

तहाँ राहु और शनैश्वरकी स्थितिका फल लिखते हैं—

राहुशनिभ्यां शिलाग्रहम् । ४४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें राहु और शनि स्थित हों तौ उस पुरुषके शिला-ओंका बनाहुआ स्थान होता है ॥ ४४ ॥

तहाँ मङ्गल और केतुकी स्थितिका फल लिखते हैं—

कुजेकेतुभ्यामैष्टकम् । ४५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें मङ्गल और केतु स्थित हों वह पुरुष ईंटोंके बने-हुए स्थानवाला होताहै ॥ ४५ ॥

तहाँ बृहस्पतिकी स्थितिका फल लिखते हैं—

गुरुणा दारवम् । ४६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चौथे नवमांशमें बृहस्पति स्थित हो उस पुरुषके काष्ठका स्थान होताहै ॥ ४६ ॥

तहाँ सूर्यकी स्थितिका फल लिखते हैं—

तार्णरविणा । ४७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें सूर्य स्थित हों उस पुरुषके तृणोंका त्याग होता है ४७

अब कारकांशसे नवम नवमांशके फल कहनेका प्रारम्भ करते हुए प्रथम शुभ ग्रहके योग और दृष्टिका फल लिखते हैं

समे शुभदृग्योगाद्धर्मनित्यः सत्यवादी

- २ - **गुरुभक्तश्च । ४८ ।**

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नौमें विमांशमें शुभ ग्रह स्थित हों या शुभग्रहका योग हो वह पुरुष निरन्तर धर्म करनेवाला होता है, सत्यवादी होता है, सत्कार भक्त होता है ॥ ४८ ॥

तहाँ पापग्रहोंके योग तथा दृष्टिका फल कहते हैं—

• २ - **अन्यथा पापैः । ४९ ।**

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें पापग्रह स्थित हों अथवा पाप ग्रहोंकी दृष्टि हो । उस पुरुषको उपरोक्त फलके विपरीत फल होता है अर्थात् वह पुरुष निरन्तर अधर्म करता है, असत्यवादी होता है; रुद्रोही होता है ॥ ४९ ॥

तहाँ शनिश्चर और राहुकी स्थितिका फल लिखते हैं—

- २ - **शनिराहुभ्यां गुरुद्रोहः । ५० ।**

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें नवम नवमांशमें शनिश्चर और राहु स्थित हों अथवा देखते हों तो ; पुरुष गुरुमें विरोध करनेवाला होता है ॥ ५० ॥

तहाँ सूर्य और बृहस्पतिकी स्थितिका फल लिखते हैं—

गुरुर्विभ्यां गुरावविश्वासः । ५१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें बृहस्पति और सूर्य स्थित हों अथवा देखतेहों तो वह पुरुष गुरुके विषे विश्वास नहीं करताहै ।

तहाँ शुक्र और मङ्गलका फल—

तत्र भृग्वङ्गारकवर्गे पारदारिकः । ५२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें शुक्र और मङ्गलका पङ्गुवर्ग हो वह पुरुष परस्त्री-गमन करताहै ॥ ५२ ॥

तहाँ शुक्र और मङ्गलकी दृष्टि तथा योगका फल—

दृग्योगाभ्यामधिकाभ्यामामरणम् । ५३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें मङ्गल या शुक्रका योग हो अथवा दृष्टि हो तो वह पुरुष मरणपर्यन्त परस्त्रीगमन करताहै ॥ ५३ ॥

ऊपरके फलकी निवृत्ति लिखतेहैं—

केतुना प्रतिबन्धः । ५४ ।

अर्थ—जिसके आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें शुक्र और मङ्गलका पङ्गुवर्ग और दृष्टि तथा योग होनेपर; यदि केतु स्थित होय या देखता होय तो विपरीत फल होताहै; अर्थात् मरणपर्यन्त कदापि परस्त्रीगामी नहीं होताहै ॥ ५४ ॥

तहाँ बृहस्पतिकी स्थितिआदिका फल—

गुरुणा स्रैणः । ५५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम

नवमांशमें बृहस्पति स्थित हों अथवा बृहस्पतिकी दृष्टि होय
तौ वह पुरुष स्त्रीके वशमें होताहै ॥ ५५ ॥

तहाँ राहुकी स्थिति आदिका फल लिखतेहैं—

राहुणार्थनिवृत्तिः । ५६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवम
नवमांशमें राहु स्थित हो अथवा राहुकी दृष्टि हो तौ उस
पुरुषके धनकी परस्त्रियोंके द्वारा हानि होतीहै ॥ ५६ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशका फल क-
हनेको प्रारम्भ करते हुए प्रथम चन्द्रमा और बृहस्पतिका फल
लिखते हैं—

लाभे चन्द्रगुरुभ्यां सुन्दरी । ५७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम
नवमांशमें चन्द्रमा और बृहस्पति स्थित हों उस पुरुषकी स्त्री
रूपवती होतीहै ॥ ५७ ॥

तहाँ राहुकी स्थितिका फल कहने हैं—

राहुणा विधवा । ५८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम
नवमांशमें राहुकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री विधवा होतीहै
अर्थात् वह विधवा स्त्रीका पति होताहै, अर्थात् अन्य पुरु-
षकी विधवा स्त्रीको अपने घरमें रखकर उसका पति होताहै ५८

तहाँ शनिकी स्थितिका फल कहतेहैं—

शनिना वयोऽधिका रोगिणी तप-

स्विनी वा । ५९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें शनिकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री अवस्थामें अधिक अर्थात् पुरुषकी अपेक्षा अधिक अवस्थावाली होतीहै, रोगिणी होतीहै, तथा तपस्या करनेवाली (सुचरित्रा) होतीहै ॥ ५९ ॥

तहाँ मङ्गलकी स्थितिका फल कहतेहैं—

कुजेन विकलाङ्गी । ६० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें कुज कहिये मङ्गलकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्रीका कोई अङ्ग हीन होताहै ॥ ६० ॥

तहाँ सूर्यकी स्थितिका फल कहते हैं—

रविणा स्वकुले गुप्ता च । ६१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें सूर्यकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री मरणपर्यन्त पतिके घरमेंही रक्षित रहतीहै अर्थात् स्वतन्त्रतासे इधर उधर फिरनेवाली दुश्चारिणी नहीं होतीहै और (चकारसे) किसी अङ्गकरके हीनभी होतीहै ॥ ६१ ॥

तहाँ बुधकी स्थितिका विशेष फल कहतेहैं—

बुधेन कलावती । ६२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें बुधकी स्थिति हो उस पुरुषकी स्त्री कलाओंको जाननेवाली अर्थात् गाने बजानेआदिमें अतिप्रवीण होतीहै ६२

तहाँ चंद्रमाकी स्थितिका विशेष फल कहतेहैं—

चौपे चन्द्रेणानावृतदेशे । ६३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ, मांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो उस पुरुषका प्रथम स्त्रीसङ्गम हुआ स्थानमें होताहै ॥ ६३ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे तृतीयनवमांशमें स्थित पापग्रहोंका फल कहते हैं—

कर्मणि पापे शूरः । ६४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय नवमांशमें पापग्रहकी स्थिति हो वह पुरुष पराक्रमी होताहै ६४
आत्मकारके नवमांशसे तृतीय नवमांशमें स्थित शुभग्रहका फल कहते हैं—

शुभे कातरः । ६५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय नवमांशमें शुभग्रहकी स्थिति हो, वह पुरुष कातर (कायर—डरपोक) होताहै ॥ ६५ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय और षष्ठ दोनों स्थानोंमें स्थित ग्रहोंका फल कहते हैं—तहाँ पापग्रहकी स्थितिका फल कहते हैं—

मृत्युचिन्तयोः पापे कर्षकः । ६६ ।

* कोई 'चापे धनुषि' ऐसा मानकर यह अर्थ करते हैं कि जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे सप्तम नवमांशमें धनराशिस्य चन्द्रमाकी स्थिति हो उस पुरुषका उक्त फल होताहै ॥ + यहाँ "मृत्यु" शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार तृतीय नवमांशका बोध होताहै ॥ x यहाँ "चिन्ता" शब्दसे (क ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार षष्ठ नवमांशका बोध होताहै ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे तृतीया नवमांश और षष्ठ नवमांश इन दोनोंमें पापग्रहोंकी स्थिति हो वह पुरुष स्वेती करनेका कार करताहै ॥ ६६ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशमें स्थित गुरुका फल कहते हैं—

समं गुरौ विशेषेण । ६७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे नवमांशमें गुरुकी स्थिति हो वह पुरुष विशेषतः स्वेतीका कार करनेवाला होताहै ॥ ६७ ॥

अब आत्मकारकके नवमांशसे द्वादश नवमांशमें स्थित शुभग्रहका फल कहते हैं—

उच्च शुभे शुभलोकप्राप्तिः । ६८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे द्वादश (बारहवें) नवमांशमें शुभ ग्रहकी स्थिति हो उस पुरुषको शुभलोकों (स्वर्गलोक ब्रह्मलोकादि)की प्राप्ति होतीहै ॥ ६८ ॥

तहाँ केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतौ कैवल्यम् । ६९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे द्वादश नवमांशमें केतुकी स्थिति हो उस पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति

* यहाँ "सम" शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार नवम नवमांशका बोध होताहै ॥ + यहाँ "उच्च" शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार बारहवें नवमांशका बोध होताहै ॥ यहांसे लेके "उच्च शुभे शुभलोकप्राप्तिः" इससे "पापेभ्यः" इससूत्रतक उच्च शब्दकी अनुवृत्ति होतीहै ॥

होती है ॥ ६९ ॥ मेघ धन सम्बन्धी कारकांशमें शुभग्रहकी स्थितिका फल कहते हैं—

क्रियचापयोर्विशेषेण । ७० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशका क्रिय कहिये मेघ और चाप कहिये धनसे सम्बन्ध हो और उसमें शुभग्रहकी स्थिति हो तो उस पुरुषको विशेषतः सायुज्य मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ७० ॥

पूर्वोक्त योगमें पापग्रहका फल कहते हैं—

पापैरन्यथा । ७१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे बारहवें नवमांशमें पापग्रहकी स्थिति हो उस पुरुषको शुभलोककी प्राप्ति नहीं होती है और मुक्तिभी नहीं होती है ॥ ७१ ॥
आत्मकारकके नवमांशमें स्थित ग्रहोंका फल कहनेका मारम्भ करतेहुये प्रथम सूर्य और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

× कोई ऐसा अर्थ कहते हैं कि जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे बारहवां नवमास मेघ और धनका सम्बन्धी हो और उसमें केतुकी स्थिति हो तो विशेषतः मुक्तिकी प्राप्ति होती है । परन्तु वास्तवमें पूर्वोक्त अर्थही युक्तियुक्त मानी होता है क्योंकि शुभग्रहोंकी अपेक्षा केतु मुक्तिफलदायक नहीं होसक्ता । यदि कहो कि जैमिनि मुनिमें केतुभी शुभग्रह कहा है तो कहना नहीं बनसक्ता क्योंकि 'अत्र शुभः केतुः' इस सूत्रमें जो केतुको शुभत्व कहा है सो सार्वत्रिक नहीं है किन्तु अत्र शब्दसे यह ध्वनि निकलती है कि 'अत्र शुभः केतुः' इस सूत्रके आगेके सूत्रमेंही केतुकी शुभत्व अल्पत्र नहीं ॥

रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः । ७२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें सूर्य और केतु स्थित हों वह पुरुष शिवके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७२ ॥

तहाँ चन्द्रमा और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

चन्द्रेण गौर्याम् । ७३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रमा और केतु स्थित हों वह पुरुष गौरी (देवी) के विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७३ ॥

तहाँ शुक्र और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

शुकेण लक्ष्म्याम् । ७४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें शुक्र और केतुकी स्थिति हो वह पुरुष लक्ष्मीके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७४ ॥

तहाँ मंगल और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजेन स्कन्दे । ७५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें मंगल और केतु यह दोनों स्थित हों उस पुरुषकी स्वामिकार्तिके-यके विषे भक्ति होती है ॥ ७५ ॥

तहाँ बुध, शनि, और केतु इन तीनोंकी स्थितिका फल कहते हैं—

यहांसे लेकर 'अमात्यदासे चैवम्' इस सूत्र पर्यन्त सम्पूर्ण सूत्रोंमें 'रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः' इस सूत्रसे केतु पदका अनुवृत्ति होती है ॥

बुधशानेभ्यां विष्णौ । ७६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें शनैश्वर, बुध, और केतु ग्रह तीनों ग्रह स्थित हों वह पुरुष विष्णुके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७६ ॥

तहाँ गुरु और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

गुरुणा साम्बशिवे । ७७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें बृहस्पति और केतु दोनों ग्रह स्थित हों वह पुरुष शिव और पार्वती इन दोनों देवताओंके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ७७ ॥

तहाँ राहु और केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

राहुणा तामस्यां दुर्गायाञ्च । ७८ ।

जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें राहु और केतु दोनों ग्रहोंकी स्थिति हो वह पुरुष भद्रकालीका तथा अन्य तामसी भूतप्रेतादिदेवताओंका भी भक्त होता है ॥ ७८ ॥

तहाँ केवल केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतुना गणेशे स्कन्दे च । ७९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें केवल शक्रकेतुही स्थित हो वह पुरुष गणेशके विषे तथा स्वामि-कार्तिकेयके विषे भी भक्ति करता है ॥ ७९ ॥

तहाँ शनि और केतुकी स्थितिका विशेष फल कहते हैं—

पापक्ष्यं मन्द्रे क्षुद्रदेवतासु । ८० ।

जिस पुरुषके आत्मकारकका नवमांश पापराशिसम्बन्धी हो और उसमें शनि और केतु इन दोनों ग्रहोंकी स्थिति हो

तौ वह पुरुष कर्णपिशाचिनी आदि क्षुद्रदेवताओंके विषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ८० ॥

तहाँ शुक्र और केतुकी स्थितिका विशेष फल कहते हैं—

१ - शुक्रे च । ८१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकका नवमांश पापराशि-का सम्बन्धी हो और उसमें शुक्र और केतु इन दोनों ग्रहोंकी स्थिति हो तौ वह पुरुषभी कर्णपिशाचिनी आदि क्षुद्रदेवता-ओंकेविषे भक्ति करनेवाला होता है ॥ ८१ ॥

ऊपर ऐसा कहाहै कि आत्मकारक ग्रहकी अपेक्षा जिस ग्रहके अंश कला आदि न्यून हों वह ग्रह अमात्यकारक कहलाता है उस अमात्यकारकसे पञ्चग्रहका फल कहते हैं—

२ - अमात्यदासे चैवम् । ८२ ।

अर्थ—अमात्यकारककी अपेक्षा दास अर्थात् अमात्य-कारकसे छठांश जिस पुरुषके पापराशिसम्बन्धी आत्मकार-कके नवमांशमें स्थित हो उस पुरुषकोभी उक्त फल होता है, अर्थात् वह पुरुषभी कर्णपिशाचिनी आदि क्षुद्रदेवताओंके विषेही भक्ति करनेवाला होता है ॥ ८२ ॥

* कोई ऐसा कहते हैं कि यह अर्थ सूत्रकारके संमत नहीं है, यदि यह संमत होता तो सूत्रकार 'पापक्षे' आदि तीनों सूत्रोंके रथानमें "पापक्षेमन्दशुक्रामात्यदासेपुक्षुद्रदेवतासु" ऐसी सूत्ररचना करते यह कहना ठीक नहीं है. क्योंकि यदि ऐसी सूत्ररचना होती तो शनि और शुक्र तथा अमात्यकारकसे छया यह इन तीनोंके एक साथ पा-पराशिसम्बन्धी आत्मकारकके नवमांशमें स्थित होनेसे उक्तफल होता, और होता तो है अत्येक ग्रहके पूर्वोक्त योग होनेपर, इसका-रण तीनों सूत्रोंकी पृथक् रचना ही युक्ति युक्त है ॥ ३ती है

कारकांशसे नवम और पञ्चमनवमांशमें स्थित ग्रहोंका फल कहते हैं—

१. त्रिकोणे पापद्वये मांत्रिकः । ८३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम और नवम नवमांश इन दोनोंमें क्रमसे दो पापग्रह स्थित हों अर्थात् दोनोंमें एक एक ग्रहकी स्थिति हो वह पुरुष मांत्रिक अर्थात् मन्त्रशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥ ८३ ॥

तहाँ पापग्रहकी दृष्टिका फल कहते हैं—

२. पापदृष्टे निग्राहकः । ८४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम और नवम नवमांश इन दोनोंमें क्रमसे दो पापग्रह स्थित हों और दोनोंके ऊपर पापग्रहोंकी दृष्टिभी हो तब वह पुरुष निग्राहक अर्थात् अन्यपुरुषके ऊपर चढ़ेहुये भूतादिको दशमें करके दूर करनेवाला होता है ॥ ८४ ॥

तहाँ शुभग्रहकी दृष्टिका फल कहते हैं—

३. शुभदृष्टेऽनुग्राहकः । ८५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांश और नवम नवमांश इन दोनोंमें क्रमसे दो पापग्रह स्थित हों और दोनोंके ऊपर शुभग्रहोंकी दृष्टिभी हो तब वह पुरुष सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाला होता है ॥ ८५ ॥

आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रस्थिति होनेपर शुक्रदृष्टिक, फल—

शुक्रेन्दौ शुक्रदृष्टे रसवादी । ८६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको शुक्रकी दृष्टि हो तो वह पुरुष ग्सोंको जानता है ॥ ८६ ॥

तहाँ बुधकी दृष्टिका फल कहते हैं—

२—८ बुधदृष्टे भिषक् । ८७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें चन्द्रमा और शुक्र इन दोनोंकी स्थिति हो और शुक्रकी दृष्टि हो तो वह पुरुष वैद्यक जाननेवाला होता है ॥ ८७ ॥

आत्मकारकांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रस्थितिहोंनेपर शुक्रदृष्टिका फल कहते हैं—

चापे चन्द्रे शुक्रदृष्टे पाण्डुशिवेत्री । ८८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको शुक्रकी दृष्टि हो तो उस पुरुषके शरीरमें श्वेत कुष्ठ होता है ॥ ८८ ॥

तहाँ मङ्गलकी दृष्टिका फल कहते हैं—

कुजदृष्टे महारोगः । ८९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको मङ्गल देखता होय तो उस पुरुषके शरीरमें महाकुष्ठ (गलितकुष्ठादि) होते हैं ॥

तहाँ केतुकी दृष्टिका फल कहते हैं—

* यहाँसे लेके “तत्र मृतावित्यादि” सूत्रमेंसे “यद्गु गुलिकाभ्यामित्यादि” सूत्रतक मृतिपदकी अनुवृत्ति होती है ॥ * यहाँ ‘चाप’ शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी सख्याके अनुसार चतुर्थ नवमांशका बोध होता है ॥

केतुदृष्टे नीलकुष्ठम् । ९० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें चन्द्रमाकी स्थिति हो और उसको केतु देखता-होय तौ उस पुरुषके शरीरमें नीलकुष्ठ होता है ॥ ९० ॥

कारकांशसे चतुर्थमें और पञ्चममें मङ्गल राहु हों तिस-
का फल—

१ २-५९

तत्र मृतौ वा कुजराहुभ्यां क्षयः । ९१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें या पञ्चम नवमांशमें मङ्गल और राहु दोनों स्थित हों उस पुरुषके क्षयरोग होता है ॥ ९१ ॥

तहाँ चन्द्रमाकी दृष्टिका फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन । ९२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें मङ्गल और राहु दोनोंकी स्थिति हो और तिसपर-भी चन्द्रमाकी दृष्टि होय तौ उस पुरुषको अवश्यही क्षयी-रोग होता है—

तहाँ मङ्गलकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजेन पिटकादिः । ९३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चौथे या पांचवें नवमांशमें मङ्गलकी स्थिति हो उस पुरुषके शरीरमें

* यहाँ “मृति” पदसे पञ्चम नवमांशका बोध होता है ॥ + आ-
शय यह है कि यदि चन्द्रमाकी दृष्टि हो तौ मृत् क्षयरोग होताहै
और चन्द्रमाकी दृष्टि न होय तौ क्षयरोग भोटा होताहै ॥

फोड़ा फुंसी आदिक रोग रहता है ॥ ९३ ॥ तहाँ केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतुना ग्रहणी जलरोगो वा । ८४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ या पञ्चम नवमांशमें केतुकी स्थिति हो उस पुरुषको संग्रहणी और जलोदर आदि रोग होने हैं ॥ ९४ ॥

तहाँ राहु और गुलिककी स्थितिका फल कहते हैं—

राहुगुलिकाभ्यां क्षुद्रविषाणि । ८५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ अथवा पञ्चम नवमांशमें राहु और गुलिककी स्थिति हो उस पुरुषको चूहे आदिके क्षुद्रविषोंका भय होता है ॥ ९५ ॥

अब कारकांश और चतुर्थ नवमांशका फल कहते हैं—

तत्र शनौ धानुष्कः । ९६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें शनिकी स्थिति हो तो वह पुरुष धनुषविद्याका जाननेवाला होता है ॥ ९६ ॥

तहाँ केतुकी स्थितिका फल कहते हैं—

केतुना घटिकायन्त्री । ९७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें केतुकी स्थिति हो वह पुरुष घड़ीपन्त्रका बनानेवाला होता है ॥ ९७ ॥

तहाँ बुधकी स्थितिका फल कहते हैं—

बुधेन परमहंसो लगुडी वा । ९८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें बुधकी स्थिति हो वह पुरुष परमहंस होता है अथवा दण्डी (संन्यासी) होता है ॥ ९८ ॥

तहाँ राहुकी स्थितिका फल कहते हैं—

राहुणा लोहयन्त्री । ९९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें राहुकी स्थिति हो वह पुरुष लोहयन्त्र (अनेक प्रकारकी कल) का जाननेवाला होता है ॥ ९९ ॥

तहाँ सूर्यकी स्थितिका फल कहते हैं—

रविणा खड्गी । १०० ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें सूर्यकी स्थिति हो वह पुरुष खड्गी अर्थात् तलवार धारण करनेवाला अथवा बमानेवाला होता है ॥ १०० ॥

तहाँ मङ्गलकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजेन कुन्ती । १०१ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें अथवा आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशमें मङ्गलकी स्थिति हो वह पुरुष कुन्त अर्थात् भालेवा धारण करनेवाला होता है ॥ १०१ ॥

अथ कारकांशका तथा कारकांशसे पञ्चम नवमांशसे
फल लिखते हैं—
१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१२

मातापित्रोश्चन्द्रगुरुभ्यां ग्रन्थकृत् । १०२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें और
आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें यदि चन्द्रमा और
बृहस्पतिकी स्थिति हो तब वह पुरुष, ग्रन्थकृत् अर्थात्
ग्रन्थोंकी रचना करनेवाला होता है ॥ १०२ ॥

तहाँ चन्द्रमा और शुक्रकी स्थितिका फल कहते हैं—

२-१८३ शुक्रेण किञ्चिदूनम् । १०३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें और
आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें चन्द्रमा और शुक्र
स्थित हों तब उस पुरुषके ग्रन्थ कर्त्तापनेमें कुछ न्यूनता
होती है ॥ १०३ ॥

तहाँ चन्द्रमा और बुधकी स्थितिका फल कहते हैं—

२-१८४ बुधेन ततोऽपि । १०४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें और
आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें चन्द्रमा और बु-
ध स्थित हों उस पुरुषके ग्रन्थ कर्त्तापनेमें औरभी न्यूनता
होती है ॥ १०४ ॥

तहाँ केवल शुक्रकी स्थितिका फल कहते हैं—

* यदि कहो कि सूत्रमें तब केवल शुक्र पद पड़ा है चन्द्रकी अनुवृ-
त्ति करनेका क्या प्रयोजन है तहाँ कहते हैं कि यदि अनुवृत्ति नहीं
करेंगे तब पुनरुत्तिष्ठोप आवैगा क्योंकि केवल शुक्रका फल तो 'शु-
क्रेण कवि' रित्यादि आगेके सूत्रमें कहाही है ॥

शुक्लेण कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च । १०५ । औ.

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें, (जान आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें शुक्ली हो वह पुरुष काव्योंका बनानेवाला, निडरबोल और काव्य विषयको जाननेवाला होता है ॥ १०५ ॥

तहाँ केवल बृहस्पतिकी स्थितिका फल कहते हैं—

गुरुणा सर्वविद् ग्रन्थिकश्च । १०६ ।

न वाग्मी । १०७ । १-२-

विशिष्यवैयाकरणो वेदवेदाङ्गविच्च । १०८ । २-१०६

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या उस नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें बृहस्पतिकी स्थिति हो वह पुरुष बृहस्पतिकी समान शास्त्रीय सबविषयोंका जाननेवाला तथा ग्रन्थ रचना करनेवाला होता है । परन्तु निडरबोलनेवाला नहीं होता है । और विशेषकरके व्याकरण शास्त्रको जाननेवाला तथा चारों वेद और शिक्षा आदि छः अङ्गोंका जाननेवालाभी होता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

तहाँ शनिकी स्थितिका फल कहते हैं—

सभाजडः शनिना । १०९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें शनैश्वरकी स्थिति हो तो वह पुरुष सभा-जड अर्थात् सभामें बोलनेकी शक्तिहीन होता है ॥ १०९ ॥

तहाँ बुधकी स्थितिका फल कहते हैं—

हो तो वह पुरुष वेदान्त शास्त्र (वेदव्यासकृत ब्रह्मसूत्र और शाङ्करभाष्यादि) का जाननेवाला तथा गीतशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥ ११३ ॥

तहाँ केतुकी स्थितिका फल कहने हैं—

केतुना गणितज्ञः । ११४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें केतुकी स्थिति हो वह पुरुष गणितशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥ ११४ ॥

उपरोक्तयोगोंमें गुरुदृष्टिका फल कहते हैं—

गुरुसम्बन्धेन सम्प्रदायसिद्धिः । ११५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशमें या आत्मकारकके नवमांशसे पञ्चम नवमांशमें उपरोक्त ग्रहोंके स्थित होनेपर यदि बृहस्पतिकी दृष्टि हो या शूक्रादिका सम्बन्ध हो तो “अनेक शास्त्रीय मतोंका जाननेवाला होता है” यह फल अधिक कहना चाहिये ॥ ११५ ॥

अब कारकांशसे द्वितीय नवमांशका फल कहते हैं—

भाग्ये चैवम् । ११६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे भाग्य कहिये द्वितीय नवमांशमें चन्द्र बृहस्पति आदिकी पूर्वानुसार यदि स्थिति होय तो भी उक्त फल (ग्रन्थरचना आदि) फल कहना चाहिये ॥ ११६ ॥

अब कारकांशसे तृतीय नवमांशका फल कहते हैं—

सदा चैवमित्येके । ११७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे तृतीय

नवमांशमें भी पूर्वोक्त ग्रहोंकी स्थितिका पूर्वोक्त फल कहना चाहिये ॥ ११७ ॥

कारकांशसे द्वितीय नवमांशमें केतुकी स्थिति और पापदृष्टिका फल कहते हैं— १ - २११८

भाग्ये केतौ पापदृष्टेः स्तब्धवाक् । ११८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशमें केतु स्थित हो और पापग्रहकी दृष्टिहो तो वह पुरुष स्तब्धवाक् अर्थात् (तोतला होता है,) अथवा स्तब्धवाक् कहिये शीघ्र उत्तर देनेमें असमर्थ होता है ॥ ११८ ॥

केमद्रुम योग दिखलाते हैं—

स्वपितृपदाद्भाग्यरोगयोः पापे साम्ये

१ - २ - १ - १' (**केमद्रुमः । ११९ ।**

अर्थ—जिस पुरुषके अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरुढपदसे द्वितीय और अष्टम राशिमें दो पापग्रह स्थित हों, या दो शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पापग्रह और शुभग्रह बराबर संख्यावाले स्थित हों तो 'केमद्रुम' नाम वाला योग होता है, सोई वृद्ध कारिकामें भी लिखा है—

“आरुढाज्जन्मलग्नाद्वा पापौ स्त्रीहानिगौ यदि ।

केवलौ सग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाशुभौ ॥

चन्द्रदृष्टौ विशेषेण योगः केमद्रुमो मतः । ”

* यहां ऐसी शङ्का होती है कि स्वपदसे कारकांशका बोध होना चाहिये क्योंकि यहां कारकांशकाही भ्रमण चल रहा है, तहां उत्तर देते हैं कि यदि यहां कारकांशका बोध करना होता तो स्वपदका सूत्रमें पाठ करना निरर्थक होजाता क्योंकि कारकांशका बोध तो केवल पितृ पदसेही होजाता फिरभी स्वशब्दका ग्रहण किया है इस कारण उक्त अर्थही ठीक है ॥

अर्थ—अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढ-
पदसे द्वितीय और अष्टम राशिमें यदि दो पापग्रह स्थित हों,
या दो शुभग्रह स्थित हों, अथवा सम संख्याके शुभ और
पापग्रह दोनों स्थित हों तहाँ केमद्रुम योग होता है और यदि
चन्द्रमाकी दृष्टिभी पड़ती होय तब ती विशेष करके केमद्रुम
योग होता है ॥

तहाँ केमद्रुम योगमें चन्द्रदृष्टिका फल कहते हैं—

२-१-चन्द्रदृष्टौ विशेषेण । १२० ।

अर्थ—पूर्वाक्तयोगमें चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो विशेष के-
मद्रुमयोग होता है. अर्थात् अतिदरिद्रयोग होता है ॥ १२० ॥

सब राशिओंके फलका समय कहते हैं—

सर्वेषां चैव पाके । १२१ ।

अर्थ—सम्पूर्ण राशिओंके फल अपनी अपनी दशामें
होते हैं इसी प्रकार जब केमद्रुमयोग करके राशिकी दशामें
दारिद्र्य रूप फल होयगा ॥ १२० ॥

इति श्रीपुरादावादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां

जैमिनीपजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

समाप्तः

अथ तृतीयः पादः ।

आरूढ कुण्डलीके ग्रहोंका अवलम्बन करके फल कहनेके
अर्थ यहाँसे आरूढ पदका अधिकार कहते हैं—

अथ पदम् । १ ।

नवमांशमें भी पूर्वोक्त ग्रहोंकी स्थितिका पूर्वोक्त फल कहना चाहिये ॥ ११७ ॥

कारकांशसे द्वितीय नवमांशमें केतुकी स्थिति और पाप-दृष्टिका फल कहते हैं—

भाग्ये केतौ पापदृष्टेः स्तब्धवाक् । ११८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशमें केतु स्थित हो और पापग्रहकी दृष्टिहो तो वह पुरुष स्तब्धवाक् अर्थात् (तोतला होताहै,) अथवा स्तब्धवाक् कहिये शीघ्र उत्तर देनेमें असमर्थ होताहै ॥ ११८ ॥

केमद्रुम योग दिसलातेहैं—

**स्वपितृपदाद्भाग्यरोगयोः पापे साम्ये
केमद्रुमः । ११९ ।**

अर्थ—जिस पुरुषके अपने जन्मलक्षणसे अथवा जन्मलग्नके आरूढपदमें द्वितीय और अष्टम राशिमें दो पापग्रह स्थित हों, या दो शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पापग्रह और शुभग्रह बराबर संख्यावाले स्थित हों तो 'केमद्रुम' नाम वाला योगहोताहै, सोई वृद्ध कारिकामें भी लिखा है—

“आरुढाज्जन्मलग्नाद्वा पापौ स्त्रीहानिगौ यदि ।

केवलौ सग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाशुभौ ॥

चन्द्रदृष्टौ विशेषेण योगः केमद्रुमो मतः । ”

* यहां ऐसी शङ्का होताहै कि स्वपदसे कारकांशका बोध होना चाहिये क्योंकि यहां कारकांशकाही भ्रमण चल रहा है, तहां उत्तर देतेहैं कि यदि यहां कारकांशका बोध करना होता तो स्वपदका सूत्रमें पाठ करना निरर्थक होजाता क्योंकि कारकांशका बोध तो केवल पितृ पदसेही होजाता फिरभी स्वशब्दका ग्रहण कियाहै इस कारण उक्त अर्थही ठीक है ॥

अर्थ—अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरुद्र-पदसे द्वितीय और अष्टम राशिमें यदि दो पापग्रह स्थित हों, या दो शुभग्रह स्थित हों, अथवा सम संख्याके शुभ और पापग्रह दोनों स्थित हों तहाँ केमद्रुम योग होता है और यदि चन्द्रमाकी दृष्टिभी पड़ती होय तब तो विशेष करके केमद्रुम योग होता है ॥

तहाँ केमद्रुम योगमें चन्द्रदृष्टिका फल कहते हैं—

१-२-१२ चन्द्रदृष्टौ विशेषेण । १२० ।

अर्थ—पूर्वोक्तयोगमें चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो विशेष के-मद्रुमयोग होता है. अर्थात् अतिदरिद्रयोग होता है ॥ १२० ॥

सब राशियोंके फलका समय कहते हैं—

२-३ सर्वेषां चैव पाके । १२१ ।

अर्थ—सम्पूर्ण राशियोंके फल अपनी अपनी दशामें होते हैं इसी प्रकार जब केमद्रुमयोग करके राशिकी दशामें दारिद्र्य रूप फल होयगा ॥ १२० ॥

इति श्रीपुरादावादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां

जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां

प्रथमाध्यायस्थ द्वितीयः पादः

समाप्तः

अथ तृतीयः पादः ।

आरुद्र कूण्डलीके ग्रहोंका अवलम्बन करने के लिये कहते हैं
अर्थ यहाँसे आरुद्र पदका अधिकार कहते हैं—

अथ पदम् । १ ।

अर्थ—यहांसे “यावदाशाश्रयपदमुक्षाणाम्” इस सूत्रमें पहले दिसाये हुए आरूढका अन्य नाम जो पद तिसका अधिकार कहते हैं ॥ १ ॥

तहाँ प्रथम लग्नारूढपदसे एकादश स्थानका फल कहते हैं—

व्यये सग्रहे ग्रहदृष्टे श्रीमन्तः । २ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके लग्नपदसे व्यय कहिये एकादश स्थान किसी ग्रहकरके युक्त हों, या उसपर किसी ग्रहकी दृष्टि हो, वह पुरुष सम्पत्तिवाले होते हैं ॥ २ ॥

तहाँ शुभग्रहकी दृष्टि और स्थितिका फल कहते हैं—

शुभैर्न्याय्यो लाभः । ३ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके लग्नपदसे एकादशस्थानमें शुभग्रह स्थित हों या, शुभग्रहकी दृष्टि होय तो वह पुरुष न्यायमार्गसे सम्पत्तिकी प्राप्ति करते हैं ॥ ३ ॥

तहाँ पापग्रहोंकी स्थिति और दृष्टिका फल कहते हैं—

पापैरमार्गेण । ४ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके लग्नपदसे एकादश स्थान पापग्रहों करके युक्त हो, या उसपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो वह पुरुष शास्त्रोंसे निषिद्ध मार्गसे सम्पत्तिका लाभ करते हैं, और यदि शुभग्रह और पापग्रह दोनों स्थित हों या दोनोंकी दृष्टि हो तो न्यायमार्गसे और शास्त्रविरुद्ध मार्गसे भी लाभ होता है ॥ ४ ॥

तहाँ नक्षत्रग्रह और स्वग्रहकी स्थितिका फल कहते हैं—

उच्चादिभिर्विशेषात् । ५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्न पदसे एकादश स्थानमें उच्च-ग्रह या अपने स्थानका स्वामी स्थित हो या इनकी दृष्टि हो तौ विशेष धनका लाभ होता है. यदि पापग्रह उच्चके होकर स्थित हों, या स्वगृहस्थ होकर स्थित हो तौ पाप वृत्तिसे विशेष धनकी प्राप्ति होती है, और यदि उच्चके या स्वगृहस्थ शुभग्रहोंकी स्थिति हो तौ न्यायमार्गसे विशेष धनकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

अब लग्नाखण्डसे द्वादशस्थानका फल लिखते हैं—

नीचग्रहद्वयोर्गोपाद्वययाधिक्यम् । ६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नाखण्डसे द्वादशस्थानमें कोई नीचग्रह स्थित हो और उसको दूसरा ग्रह देखता हो तौ अधिक व्यय होता है, परन्तु शुभग्रह स्थित हो और उसको शुभग्रह ही देखता हो तौ शुभ कर्मोंमें अधिक व्यय होता है, और यदि पापग्रह स्थित हो या पापग्रहकी दृष्टि हो तौ असत्कर्मोंमें अधिक व्यय होता है ॥ ६ ॥

तहाँ मूर्य राहु और शुक्रकी स्थितिका फल कहते हैं—

रविराहुशुक्रैर्नृपात् । ७ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नाखण्डसे द्वादशस्थानमें मूर्य राहु और शुक्र, यह सम्पूर्ण एक साथ स्थित हों या अलग-अलग स्थित हों तौ उस पुरुषको राजद्वारमें व्यय होता है ॥ ७ ॥

वहाँ मूर्य राहु और शुक्रकी स्थिति होनेपर चन्द्रमाकी दृष्टि होनेपर फल कहते हैं—

चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन । ८ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वादशस्थानमें सूर्य राहु और शुक स्थित हों तथा चन्द्रमाकी दृष्टि होय तो निश्चय करके राजद्वारमें व्यय होता है, अर्थात् चन्द्रमाकी दृष्टि होने-पर निश्चय करके राजद्वारमें व्यय होता है, और यदि चन्द्रमाकी दृष्टि न हो तो राजद्वारमें व्यय होनेका सन्देह होता है ८ तहाँ बुधकी स्थितिका फल लिखते हैं—

बुधेन ज्ञातिभ्यो विवादाद्वा । ९ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वादशस्थानमें बुध स्थित हो तो उस पुरुषका जातिके पुरुषोंके निमित्त धनका व्यय होता है ॥ ९ ॥

तहाँ गुरुकी स्थितिका फल कहते हैं—

गुरुणा करमूलात् । १० ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वादश स्थानमें बृहस्पति स्थित हो, उस पुरुषका कर देनेमें व्यय होता है ॥ १० ॥

तहाँ मङ्गल और शनिकी स्थितिका फल कहते हैं—

कुजशनिभ्यां भ्रातृमुखात् । ११ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वादशस्थानमें मङ्गल और शनिकी स्थिति हो उसका भ्राताके द्वारा व्यय होता है ॥ ११ ॥

अब लग्नारूढ़पदसे एकादशस्थानका फल लिखते हैं—

- ३ - १. एतैर्व्यय एवं लाभः । १२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वादशस्थानमें स्थित ग्रहोंसे जिन २ के द्वारा व्यय कहा है, यदि एकादश स्थानमें उन ग्रहोंकी स्थिति होय तो उन उनही पुरुषोंके द्वारा लाभ होता है ॥ १२ ॥

अब लग्नपदसे सप्तमस्थानका फल लिखते हैं—

लाभे राहुकेतुभ्यामुदररोगः । १३ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से सप्तमस्थानमें राहु और केतुकी स्थिति हो उस पुरुषको उदर रोग होता है ॥ १३ ॥

अब लग्नपदसे द्वितीय स्थानका फल लिखते हैं—

तत्र केतुना झटिति ज्यानि लिङ्गानि । १४ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नपदसे द्वितीय स्थानमें केतुकी स्थिति हो उस, पुरुषके शीघ्रही वृद्धावस्थाके चिन्ह होजाते हैं १४ ॥

तहाँ चन्द्र गुरु और शुक्रकी स्थितिका फल लिखते हैं—

* कोई 'तत्र' पदसे पूर्वोक्त लाभ पदकी अनुवृत्ति करके ऐसा अर्थ करते हैं कि " लग्नारूढ़से सप्तमस्थानमें केतु स्थित हो तो वार्द्धक्य चिन्ह होते हैं " परन्तु ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है क्योंकि यदि 'तत्र' पदसे सप्तमस्थानकाही बोध होता तो सूत्रमे तत्र पदका कोई प्रयोजन नहीं था क्योंकि सप्तमस्थानका फल तो प्रचलितही है । परन्तु सूत्रमे तत्र पदका ग्रहण किया इससे विदित होता है कि यह सप्तम स्थानका फल नहीं कहा है किन्तु तत्र पदमे लभ्य द्वितीय स्थानका फल कहा है । और "चन्द्रगुरुशुक्रकेषु श्रीमन्त " ऐसा आगेका सूत्र है यदि तत्र पदसे सप्तमस्थानकी अनुवृत्ति करी जायगी तब तो इस सूत्रका अर्थ सङ्गत नहीं होयगा क्यों कि सप्तमस्थानसे तो धनका विचार होताही नहीं है इस कारण उक्त अर्थही युक्त है ॥

चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वितीयस्थानमें चन्द्रमा वृहस्पति और शुक्रकी स्थिति हो वह स्थिति एक दोकी हो या सम्पूर्ण ग्रहोंकी हो तो वह पुरुष लक्ष्मीवाले होते हैं ॥ १५ ॥

तहाँ उच्च ग्रहकी स्थितिका फल लिखते हैं—

उच्चेन वा । १६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके लग्नारूढ़से द्वितीयस्थानमें शुभ या पाप कोई ग्रह उच्चका हो कर पड़ा हो तो वह पुरुषभी लक्ष्मी वाला होता है ॥ १६ ॥

तहाँ फल जाननेमें विशेषता लिखते हैं—

स्वांशवदन्यत्प्रायेण । १७ ।

अर्थ—लग्नपदसे द्वितीयस्थानका और जो फल नहीं कहा है, सो सब आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशके फलकी समान जानना चाहिये अर्थात् जो फल आत्मकारकके नवमांशसे द्वितीय नवमांशका कहा है वही फल लग्नारूढ़से द्वितीय स्थानका भी जानना ॥ १७ ॥

अब लग्नपदसे केन्द्रस्थान और त्रिकोणस्थानका फल कहते हैं—

लाभपदे केन्द्रत्रिकोणे वा श्रीमन्तः । १८ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके जन्मलग्नपदसे केन्द्रस्थान कहिये प्रथम चतुर्थ और सप्तम तथा दशम स्थानमें और त्रिकोण कहिये पञ्चम तथा नवमस्थानमें यदि लग्नसे सप्तमस्थानका आरूढ़ हो तो वह पुरुष धनवान् होते हैं ॥ १८ ॥

अन्यथा दुःस्थे । १९ ।

अर्थ—जिन पुरुषोंके जन्मलग्नारूढसे पष्ठ अष्टम और द्वादश स्थानमें यदि लग्नसे सप्तम राशिका आरूढ हो तो वह पुरुष निर्धन होते हैं ॥ १ ॥

लग्नारूढसे केन्द्र त्रिकोण और उपचयस्थानका फल कहते हैं—

केन्द्रे त्रिकोणोपचयेषु द्वयोर्मैत्री । २० ।

अर्थ—लग्नसे सातवाँ आरूढ पद यदि केन्द्र (प्रथम-चतुर्थ-सप्तम) में और त्रिकोण (पञ्चम तथा नवमस्थान) में तथा उपचय स्थान (तृतीय-पष्ठ-दशम-और एकादश) में होय तो स्त्री और पतिकी मित्रता होती है। इसी प्रकार यदि लग्नारूढपदसे केन्द्र और त्रिकोण तथा उपचय स्थानमें पुत्रादिभाव आरूढपद हो तो पिता पुत्रादि तिन तिनकी परस्पर मित्रता होती है ! परन्तु यहाँ उपचय स्थानोंमें पष्ठ-स्थानको छोड़कर अन्यस्थान ग्रहण करना चाहिये क्योंकि आगे । “रिपुरोगचिन्तासु वैरम्” इस सूत्रमें शत्रुता कही है ॥ २० ॥

रिपुरोगचिन्तासु वैरम् ॥ २१ ॥

अर्थ—लग्नारूढ पदसे पष्ठ अष्टम तथा द्वादश स्थानमें जिस २ भावका आरूढ पद हो उस उससे परस्पर शत्रुता होती है जैसे लग्नारूढपदसे पूर्वोक्त स्थानमें मातृवै भावका आरूढ पद हो तब स्त्री पुरुषकी परस्पर शत्रुता होती है। इसी प्रकार धन और भ्रातृ आदि भावोंके पूर्वोक्त स्थानमें स्थित होने-पर धन भ्राता और माता आदिमें वैर होता है ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त अर्गलायुक्त लग्नारूढपद और सप्तमारूढपदका फल कहते हैं—

पत्नीलाभयोर्दिष्ट्या निराभासार्गलया ॥ २२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषका जन्मलग्नारूढपद और सप्तमारूढपद निराभास कहिये बाधकरहित जो अर्गला निस-करके युक्त हो वह पुरुष भाग्यवान् होता है इसी प्रकार प्राचीन कारिकामें भी कहा है—

“यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले ।

तेन द्रष्टेक्षितं लग्नं प्रावल्यायोपकल्प्यते ॥

यदि पश्येद्ग्रहस्तत्र विपरीतार्गलस्थितः ।”

अर्थ—जिस पुरुषके शुभ अर्गलाके विषे पापग्रह अथवा शुभग्रह स्थित हो और वह लग्नको देखताहोय तौ लग्न प्रवर्तताको प्राप्त होती है, परन्तु यदि उस लग्नको विपरीत अर्गलाके विषे स्थित कोई ग्रह नहीं देखता होय तौ ॥ २२ ॥

शुभार्गले धनसमृद्धिः ॥ २३ ॥

अर्थ—परन्तु जिस पुरुषके जन्मलग्नारूढ और सप्तमारूढके विषे शुभ ग्रहोंकरकेही अर्गला होय तौ धनकी अ-

+ दिष्टयेत्याकारान्तः शब्दः । “दिष्ट्या समुपजोपश्चेत्यानन्दे”—इत्य-
मरः । अथवा दिष्टमेव दिष्ट्यं दिष्टं भागधेयं तेषां ते दिष्ट्या भाग्यवन्त इत्यर्थः ॥ * यहा शङ्का होती है कि शुभार्गल शब्दसे शुभपापसा-
धारण निर्बाध अर्गलका ग्रहण क्यों नहीं होताहै जैसाकि “भयपुण्ये-
त्यादि श्लोकमें माना है । तहां कहतेहैं कि यदि इस सूत्रके अर्थमें शुभार्गल शब्दसे शुभपापसाधारणनिर्बाध अर्गलका ग्रहण करेंगे तौ इस सूत्रका कर्तव्य पूर्वसूत्रसे ही सिद्ध होनेके कारण यह सूत्र व्यर्थ होजायगा ।

त्यन्त वृद्धि होती है। इससे यह वार्त्तासिद्धि हुई कि पापग्रहोंकरके अर्गला होय तो धनकी वृद्धि नहीं होती है पहिले सूत्रमें शुभ और पाप दोनोंकी निर्वाध अर्गला करके धनीपना आदि भाग्यवान् पना कहा था, और इस सूत्रके विषे केवल शुभग्रहमात्रकी अर्गला होनेसे धनकी वृद्धिरूप फल कहा है, अर्थात् यदि शुभग्रहोंकरके अर्गला होय तो सदा धनकी वृद्धि होती रहती है, और पापग्रहोंकरके पूर्वाक्त अर्गला होय तो धनवान् मात्र फल होता है, सदा धनकी वृद्धि नहीं होती है और यदि शुभ और पाप दोनोंकरके पूर्वाक्त अर्गला होय तो कभी धनकी वृद्धि होती है और कभी धनकी हानि होती है ॥

अब राजयोग लिखते हैं—

जन्मकालघटिकास्वेकदृष्टास्तु

राजानः । २४ ।

अर्थ—जन्मलग्न (प्रसिद्ध है), और काललग्न, तथा घटिकाललग्न इन तीनोंके और एक किसी ग्रहकी दृष्टि होय तो वह राजा होते हैं । यहाँ यह नियम नहीं है कि एकही ग्रह देखता हो, किन्तु यह नियम है कि तीनोंको देखता हो, काललग्नके जाननेकी रीति पहिले कह चुके हैं । और घटिकाललग्न बनानेकी रीति प्राचीनकारिकाओंमें कही है—

“लग्नादेकघटीमात्रं याति लग्नं दिनेदिने ।

परन्तु घटिकालं निर्दिशेत्कालवित्तमः ॥”

अर्थ—लग्नसे लेकर प्रतिदिन एक एक घटीमें एक एक लग्न व्यतीत होती है, इसकारण सूर्योदयसे लेकर जितनी

घटिका दिन व्यतीत हुआ हो जन्मलग्नसे लेकर उतनीई लग्न व्यतीत होतीहैं ॥

पत्नीलाभयोश्च राश्यंशकुण्डलाणैर्वा । २५ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी जन्मराशिकुण्डली, नवांशकुण्डली और द्रेष्काणकुण्डलीके विषे लग्न और सप्तम इन दोनों स्थानोंको एकही ग्रह देखता होय तौ यह पुरुष राजा होताहै, द्रेष्काण लानेकी रीति “ राशिविभागा ” इत्यादि रीतिके अनुसार कह चुकेंहैं, तीनों कुण्डलियोंके विषे दो स्थानोंपर एकही ग्रहकी दृष्टि कही है, सो इसप्रकार छहों स्थानोंके ऊपर एकही ग्रहकी दृष्टि होय तौ पूर्ण राजयोग होताहै । यहाँ राशिशब्दसे जन्मकालमें जहाँ चन्द्रमा होय उस राशिका ग्रहण करना लग्नका नहीं ॥ २५ ॥

पूर्वाक्त दोनों राजयोगोंमें कुछ विशेष लिखते हैं—

तेष्वेकस्मिन् न्यून न्यूनम् । २६ ।

अर्थ—जन्मलग्न और होरलग्न तथा घटिकालग्न इन तीनोंको कोई एकही उच्च ग्रह देखता होय तौ पूर्ण राजयोग होताहै, और उनमें यदि दो या एकको देखता होय तौ न्यून राजयोग होताहै, जन्मराशिकुण्डली और द्रेष्काणकुण्डली तथा नवमांशकुण्डली, इन तीनोंमें लग्न और सप्तम स्थानको कोई एक उच्च ग्रह देखता होय तौ पूर्ण राजयोग होताहै । और यदि जन्मराशिकुण्डली तथा द्रेष्काणकुण्डली, इन दोनोंके विषे, अथवा जन्मराशिकुण्डली तथा नवमांशकुण्डली, इन दोनोंके विषे कहीं केवल लग्नको, कहीं केवल सप्तमको, और कहीं दोनोंको कोई एकही ग्रह देखता होय

तो पूर्वोक्तसे न्यून राजयोग होता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंमें उच्च ग्रह या चन्द्रमा अथवा बृहस्पति या शुक्र इनमेंसे कोई स्थित हो और दुष्टार्गला बाधक न हो तो राजयोग, विशेषकरके होता है ॥ २६ ॥

एवमंशतो दृक्काणतच्च । २७ ।

अर्थ—जिसप्रकार “जन्मकालघटिकास्वेकदृष्टा-
तु राजानः” इस सूत्रके विषे, जन्मलग्न, होरालग्न, और
द्रेष्काणलग्न इन तीनोंके ऊपर किसी एक ग्रहकी दृष्टि होनेसे
राजयोग होता है. विसी प्रकार अंशलग्न, होरालग्न, और घ-
टिकालग्न इन तीनोंके तथा द्रेष्काणलग्न, होरालग्न, और
घटिका लग्न इन तीनोंके ऊपर किसी एक ग्रहकी दृष्टि होय
तो राजयोग होता है, ॥ २७ ॥

और एक राजयोग अन्यग्रन्थसे संग्रहकरके वृद्धोंने
कहा है—

“निशार्द्धाच्च दिनार्द्धाच्च परं सार्द्धद्विनाड़िकाः ।

शुभा तद्गुर्वो राजा धनी वा तत्समोऽपि वा” ॥

अर्थ—रात्रिमें अर्द्धरात्रिके अनन्तर और दिनमें दोपह-
रके अनन्तर ढाई घटिका शुभ हैं, उस समयमें यदि किसीका
जन्म हो तो वह पुरुष राजा होता है, अथवा राजाओंकी
समान धनवान् होता है ॥ २७ ॥

अब यानयोग लिखते हैं—

शुक्रचन्द्रयोर्मियो दृष्टयोः सिंहस्थयोर्वा

यानवन्तः । २८ ।

अर्थ—किसी पुरुषकी कुण्डलीके विषे शुक्र और चन्द्रमा जिस किसी स्थानमेंभी स्थित होकर यदि परस्पर देखते हों तो वह पुरुष सवारीवाला होता है । और शुक्र तथा चन्द्रमा परस्पर तीसरे स्थानपर स्थित हों तबभी वह पुरुष सवारीवाला होता है । सोई वृद्धकारिकामेंभी कहा है—

“चन्द्रः कविं कविश्चन्द्रं पश्यत्यपि तृतीयगे ।

शुक्राच्चन्द्रे ततः शुके तृतीये वाहनार्थवान्” ॥

इसका अर्थ स्पष्ट है ॥ २८ ॥

अब वितानादिधारणरूप राजचिह्नयोग कहते हैं—

शुक्रकुजकेतुपु वैतानिकाः । २९ ।

अर्थ—जिसके कुण्डलीके विषे शुक्र, मंगल, और केतु परस्पर दृष्टि करते हों, या परस्पर तृतीय स्थानमें स्थित हों तो वह पुरुष वितान (छत्र) आदि राजचिह्न धारण करनेवाला होता है ॥ २९ ॥

अब और राजयोग कहते हैं—

स्वभाग्यदारमातृभावसमेपु शुभेपु

राजानः । ३० ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारके स्थानसे द्वितीय वा चतुर्थ तथा पञ्चमभावकी राश्यादि शुभग्रहोंकी राश्यादिके तुल्य हों तो वह पुरुष राजा होता है । इसप्रकार सम्पूर्ण कारकोंमें राजयोग होतेहैं इसकारण पुत्रादिकारकोंको राजयोगका बल होनेपर पुत्रादिकोंकोभी राजयोग कहना चाहिये ॥ ३० ॥

अब और राजयोग कहते हैं—

६-६१ कर्मदासयोः पापयोश्च । ३१ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकसे तृतीय और षष्ठभावकी राश्यादि पापग्रहोंकी राश्यादिके समान हों तब वह पुरुषभी राजा होता है ॥ ३१ ॥

अब और राजयोग कहते हैं—

पितृलाभाधिपाच्चैवम् । ३२

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे और सप्तमेशसे द्वितीय और चतुर्थ तथा पञ्चमभावकी राश्यादि शुभग्रहोंकी राश्यादिके तुल्य होयें अथवा तृतीय और षष्ठभावकी राश्यादि पापग्रहोंकी राश्यादिके समान हों तबभी वह पुरुष राजा होता है ॥ ३२ ॥

अब राजसम योग कहते हैं—

मिश्रे समाः । ३३ ।

अर्थ—यदि तिन दोनों राजयोगोंके विषे शुभग्रहके स्थानमें पापग्रह हो, और पापग्रहके स्थानमें शुभ ग्रह हों अर्थात् दोनों योगोंमें शुभग्रह और पापग्रह दोनों मिश्रित हों तब राजसम योग होता है, अर्थात् वह पुरुष राजाकी तुल्य होता है ॥ ३३ ॥

अब दरिद्रयोग कहते हैं—

दारिद्रा विपरीते । ३४ ।

* यहां “कर्म” पदसे (क ट न य) आदि वर्णोंकी संख्याक अनुसार तृतीयभावका बोध होता है + “दास” पदसेभी षष्ठ भावका बोध होता है.

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे पूर्वोक्त दोनों योगोंमें शुभग्रहोंके स्थानमें पापग्रह और पापग्रहोंके स्थानमें शुभग्रहही हों अर्थात् शुभग्रह और पापग्रह विपरीततासे स्थित हों तौ वह पुरुष दरिद्र होताहै ॥ ३४ ॥

अब राजकार्याधिकारयोगकहते हैं—

मातरि गुरौ शुके चन्द्रे वा राजकीयाः । ३५ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे जन्मलग्नेशके स्थानसे अथवा सप्तमेशके स्थानसे पञ्चमस्थानके विषे बृहस्पति, या शुक्र अथवा चन्द्रमाइन तीनोंमें कोई एक अथवा तीनों ग्रह स्थित हों तौ वह पुरुष किसी राजकीय कार्यका अधिकारी होताहै ॥ ३५ ॥

अब सेनापतियोग लिखते हैं—

कर्मणि दासें वा पापे सेनान्यः । ३६ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नेशके अथवा सप्तमेशके स्थानसे तृतीय और षष्ठ स्थानमें पापग्रह स्थित हो तौ वह पुरुष सेनापति होता है ॥ ३६ ॥

अब बुद्धियोग लिखते हैं—

स्वपितृभ्यां कर्मदासस्यदृष्ट्या तदीशदृष्ट्या
मातृनाथदृष्ट्या च धीमन्तः । ३७ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकमें अथवा लग्नेसे तृतीय अथवा षष्ठ स्थानमें स्थित ग्रह आत्मकारकको या लग्नेको देखता हो अथवा तृतीयस्थानका स्वामी या षष्ठस्थानका स्वामी आत्मकारक या लग्नेको देखता हो

अथवा पञ्चमस्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नको देखता होय तौ वह पुरुष बुद्धिमान होता है ॥ ३७ ॥

अब मुख्ययोग लिखते हैं—

॥ दारेशदृष्ट्या सुखिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिम पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारक और लग्नसे चतुर्थस्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नकारकको देखता होय तौ वह पुरुष सुखी होता है ॥ ३८ ॥

अथ दरिद्रयोग कहते हैं—

रोगेशदृष्ट्या द्रिद्राः । ३९ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकमे और लग्नमे अष्टम स्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नको देवता होय तौ वह पुरुष दरिद्र होताहै ॥ ३९ ॥

अब व्ययशीलयोग लिखते हैं—

सिंपुनाथदृष्ट्या व्ययशीलाः । ४० ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकमे और लग्नसे द्वादश स्थानका स्वामी आत्मकारकको और लग्नको देखता होय तौ वह पुरुष अधिक व्यय करनेवाला होता है ॥ ४० ॥

जब बलयोग लिखते हैं—

स्वामिदृष्ट्या प्रबलाः । ४१ ।

+ यहाँ (" रोग " पदसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार अष्टम स्थानका बोध होता है. x यहाँ ('रिपु' शब्दसे (क. ट. प. य.) आदि वर्णोंकी संख्याके अनुसार द्वादशस्थानका बोध होता है.

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नेश लग्नको देखता हो या कारकाश्रित राशीश कारकको देखता होय तो वह पुरुष अत्यन्त बलवान होता है ॥ ४१ ॥

अब आरत्तिभोग लिखतेहैं—

पश्चाद्रिपुभाग्ययोग्रहसाम्ये बन्धः को-
णयोरिपुजाययोः कीटयुग्मयोर्दरि-
रप्योश्च । ४२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नसे द्वितीय स्थानके विषे, द्वादशस्थानके विषे, और पञ्चमस्थानके विषे, तथा नवमस्थानके विषे, और द्वादश स्थानके विषे तथा पष्ठ स्थानके विषे, और एकादशस्थानके विषे, तथा तृतीय-स्थानके विषे और चतुर्थस्थानके विषे तथा दशमस्थानके विषे ग्रह समानसंख्याके हों तो वह पुरुष कारागार (जेल-खाने) के विषे बन्धनको भात होता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंको शुभ ग्रह देखते हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका शुभ ग्रहोंने सम्बन्ध हो तो वह पुरुष केवल राजकीय पुरुषों-करके पकड़ा जाता है दुःख नहीं भोगना पड़ता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे पापग्रह स्थित हों, या पूर्वोक्त स्था-
नोक्त पापग्रह देखते हों, या पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका पापग्रहोंने सम्बन्ध हो तो वह पुरुष निगड़ (हथकड़ी बेड़ी तौक आदि) से बंधता है, और प्रहारकी पीड़ाको भी भात होता है ॥ ४२ ॥

अब नेत्रभङ्गयोग लिखते हैं—

शुक्राद्गौणपदस्थो राहुः सूर्यदृष्टो
नेत्रहा । ४३ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे शुक्रसे तथा लग्नसे
।श्वम राशिके आरूढपदके विषे राहु स्थित हो और उसपर
सूर्यकी दृष्टि हो तौ वह पुरुष नेत्रहीन होता है ॥ ४३ ॥

अब राजचिन्हयोग लिखते हैं—

स्वदारगयोः शुक्रचन्द्रयोरातोद्यं
राजचिन्हानि च । ४४ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारक स्था-
नसे चतुर्थस्थानके विषे शुक्र तथा चन्द्रमा स्थित होय तौ वह
पुरुष आतोद्य (बाजाविशेष) आदि किसी राजचिन्हका
धारण करनेवाला होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमुरादावादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपमणीतायां
जैमिनीयजातकशास्त्रव्याख्यायां प्रथमाध्यायस्य
तृतीयः पादः समाप्तः ।

अथ चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

तहा औरभी विशेष फल कहनेके निमित्त प्रथम उपपद
पद कहते हैं—

उपपदं पदं पित्रनुचरात् । १ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नेश लग्नके देखता हो या कारकाश्रित राशीश कारकको देखता हो तो वह पुरुष अत्यन्त बलवान होता है ॥ ४१ ॥

अब आपत्तियोग लिखतेहैं—

पश्चाद्रिपुभाग्ययोर्ग्रहसाम्ये बन्धः को-
णयोरिपुजाययोः कीटयुग्मयोर्दरि-
रप्योश्च । ४२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे लग्नसे द्वितीय स्थानके विषे, द्वादशस्थानके विषे, और पञ्चमस्थानके विषे, तथा नवमस्थानके विषे, और द्वादश स्थानके विषे तथा षष्ठ स्थानके विषे, और एकादशस्थानके विषे, तथा तृतीय-स्थानके विषे और चतुर्थस्थानके विषे तथा दशमस्थानके विषे ग्रह समानसंख्याके हों तो वह पुरुष कारागार (जेल-स्थाने) के विषे बन्धनको प्राप्त होता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे शुभ ग्रह स्थित हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंको शुभ ग्रह देखते हों, अथवा पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका शुभ ग्रहोंमें सम्बन्ध हो तो वह पुरुष केवल राजकीय पुरुषों-करके पकड़ा जाता है दुःख नहीं भोगना पड़ता है, और यदि पूर्वोक्त स्थानोंके विषे पापग्रह स्थित हों, या पूर्वोक्त स्थानोंको पापग्रह देखते हों, या पूर्वोक्त स्थानोंके स्वामियोंका पापग्रहोंमें सम्बन्ध हो तो वह पुरुष निगड़ (हथकड़ी बेड़ी तोक आदि) से बंधना है, और महारकी पीड़ाको भी प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अब नेत्रभद्रयोग लिखते हैं—

शुक्राद्रौणपदस्थो राहुः सूर्यदृष्टो
— ३-४३ नेत्रहा । ४३ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे शुक्रसे तथा लग्नसे
धन राशिके आरुद्रपदके विषे राहु स्थित हो और उसपर
सूर्यकी दृष्टि हो तो वह पुरुष नेत्रहीन होता है ॥ ४३ ॥

अब राजचिन्हयोग लिखते हैं—

स्वदारगयोः शुक्रचन्द्रयोरातोद्यं
राजचिन्हानि च । ४४ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारक स्था-
ने चतुर्थस्थानके विषे शुक्र तथा चन्द्रमा स्थित होय तो वह
रूप आतोद्य (बाजाविशेष) आदि किसी राजचिन्हका
धारण करनेवाला होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमुरादावादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपमणीतायां
जैमिनीयजातकशास्त्रव्याख्यायां प्रथमाध्यायस्य
तृतीयः पादः समाप्तः ।

अथ चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

तहाँ औरभी विशेष फल कहनेके निमित्त प्रथम उपपद
पद कहते हैं—

उपपदं पदं पित्रनुचरात् । ५

लग्नसे द्वादशराशिके आरूढ़पदको उपपद कहते हैं ॥ १ ॥
अब उपपदके आश्रयसे फल कहते हैं—

**तत्र पापस्य पापयोगे प्रव्रज्या
दारनाशो वा । २ ।**

अर्थ—जिस पुरुषके जन्मकालमें उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी पापग्रह हो और तहाँ पापग्रहका योग होय तो संन्यास ग्रहण करनेवाला होता है, अथवा स्त्रीका नाश होजाना है ॥ २ ॥

अब यहाँ रविके विषयमें कुछ विशेष विधान लिखते हैं—
उपपदस्याप्यारूढत्वादेव नात्र रविपापः । ३ ।

अर्थ—उपपदकोभी एक मकारका आरूढ़ होनेके कारण यहाँ रवि पापग्रह नहीं है तिस कारण उपपदसे द्वितीय मेसादि पापराशियोंके विषे रविके होनेपर द्वितीय सूत्रमें कहाहुआ फल नहीं होता है ॥ ३ ॥

शुभ ग्रहकी दृष्टि होनेपर विशेषता कहते हैं—

शुभदृग्योगान्न । ४ ।

उपपदसे द्वितीय स्थानके विषे शुभ ग्रहकी दृष्टि अथवा योग होनेपरभी द्वितीय सूत्रमें कहाहुआ फल नहीं होता है ॥ ४ ॥

* यहाँ “पित्रनुचर”पदसे द्वादशराशिका बोध किस मकार होता है ? उत्तर “पित्रनुचरमनुचरं द्वितीयं यस्य” इस मकार व्युत्पत्ति करनेसे उक्त अर्थका लाभ होता है, और पन्थने “पित्रनुचरात्”पदसे संज्ञावाला सममराशिका जो बोध करा है सो अयोग्य है क्योंकि यदि मृत्रकारकों समम रगानकी अपेक्षा होती तो तबवार्ग “उपपदस्य पदस्य लाभान्” ऐसा सूत्र त्पने ॥

अब नीचग्रहके विषयमें फल कहते हैं—

नीचे दारानाशः । ५ ।

अर्थ—उपपदसे द्वितीय राशिके विषे नीच ग्रहका न-
वांशक अथवा नीच ग्रहकी स्थिति होय तौ स्त्रीका मरण
होता है ॥ ५ ॥

अब बहुदारयोग कहते हैं—

उच्चे बहुदाराः । ६ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय
स्थानमें उच्च राशिके विषे स्थित ग्रहका नवांशक हो अथ-
वा उच्च ग्रहकी स्थिति होय तौ उस पुरुषके बहुत स्त्री होती
हैं ॥ ६ ॥

युग्मे च । ७ ।

अर्थ—उपपदसे द्वितीय राशि मिथुन होय तौ भी बहुत
स्त्री होती हैं ॥ ७ ॥

अब दारनाश योगमें विलम्बकर योग कहते हैं—

**तत्र स्वामियुक्ते स्वर्क्षे वा तद्धेतावुत्त-
रायुपि निर्दारः । ८ ।**

अर्थ—जिसकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्था-
न अपने स्वामीकरके युक्त हों, अथवा उपपदसे द्वितीय
स्थानका स्वामी अपनी राशिमें स्थित होय तौ, पिछली
अवस्था (वृद्धावस्थामें) पुरुष स्त्रीहीन हो जाता है ॥ ८ ॥

अब अन्ययोग कहते हैं—

उच्चे तस्मिन्नुत्तमकुलादारलाभः । ९ ।

अर्थ—यदि उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी उच्च शिके विषे स्थित होय तौ उत्तम कुलसे स्त्रीकी प्राप्ति होती तहाँ विपर्यय कहते हैं—

नीचे विपर्ययः । १० ।

अर्थ—यदि उपपदसे द्वितीयस्थानका स्वामी नीच रा शिके विषे स्थित होय तौ पूर्वोक्तसे विपरीत फल होता है अर्थात् नीचकुलसे स्त्रीकी प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

शुभसम्बन्धात्सुन्दरी । ११ ।

अर्थ—उपपदसे द्वितीय स्थानके विषे शुभ चरगंकी दृष्टि अथवा योग होय तौ स्त्री सुन्दरी होतीहै ॥ ११ ॥
तहाँ राहु और शनिका फल कहते हैं—

राहुशनिभ्यामपवादात्प्रागो ना-
शो वा । १२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें राहु और शनिकी स्थिति होय तौ लोकापवादात् से स्त्रीका त्याग अथवा नाश होता है ॥ १२ ॥

तहाँ शुक्र और केतुका फल कहते हैं—

शुक्रकेतुभ्यां रक्तप्रदरः । १३ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुक्र और केतुका योग होय तौ उच्च

अस्थिस्रावो बुधकेतुभ्याम् । १४ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें बुध और केतुका योग हो उसकी स्त्री अस्थि-
स्राव रोगवाली होती है ॥ १४ ॥

तहाँ शनि, रवि, और राहु इन तीनोंका फल कहते हैं—

शानिरविराहुभिरस्थिज्वरः । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानमें शनि सूर्य और राहु इन तीनोंका योग होय उस-
की स्त्रीके अस्थिगत ज्वर होता है ॥ १५ ॥

तहाँ बुध और केतुकी स्थितिका अन्य फल कहते हैं—

बुधकेतुभ्यां स्थौल्यम् । १६ ।

अर्थ—जिसकी कुण्डलीमें उपपदसे द्वितीय स्थानके
विषे बुध और केतुका योग होय तौ उस पुरुषकी स्त्री स्थल
शरीरवाली होती है ॥ १६ ॥

तहाँ बुध और भौमका विशेष योग कहते हैं—

बुधक्षेत्रे मन्दाराभ्यां नासिकारो- गः । १७ । कुजक्षेत्रे च । १८ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय
स्थानका स्वामी बुध अथवा मंगल होय और तहाँ भौम
तथा शनिका योग होय तौ नासिकाके रोग वाली स्त्री
होती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

तहाँ गुरु तथा शनिके योगका फल कहते हैं—

गुरुशनिभ्यां कर्णरोगो नरहका च । १९ ।

अर्थ—जिसकी कुण्डलीके विषे बुध अथवा भौमका उपपदसे द्वितीय स्थान होय और उसमें गुरु तथा शनिकी स्थिती होय तौ उस पुरुषकी स्त्री कर्णरोगवाली और नाड़ीके निःसरण रोगवाली होती है ॥ १९ ॥

तहाँ गुरु और राहुका फल कहते हैं—

गुरुराहुभ्यां दन्तरोगः । २० ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी बुध अथवा मंगल हो और तहाँ गृहस्थति और राहुकी स्थिति होय तौ उसकी स्त्री दन्तरोगवाली होती है ॥ २० ॥

शनिराहुभ्यां कन्यातुल्योः पङ्गुर्वात- रोगो वा । २१ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी जन्मकुण्डलीके विषे उपपदसे द्वितीय स्थान कन्या अथवा तुला राशि हो और उसके विषे शनि और राहु यह दोनो ग्रह स्थित हों तौ उसकी स्त्री पङ्गु अथवा वातरोगवाली होती है ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त योगोंका निषेध कहते हैं—

शुभग्रहयोगान्न । २२ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीमें उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुभग्रहकी दृष्टि अथवा स्थिति होय तौ पूर्व कहेहुए दोष नहीं होते हैं ॥ २२ ॥

अब भतमभाष आदिसे द्वितीय स्थानका फल कहते हैं—

सप्तमांश ग्रहेभ्यश्चैवम् । २३ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे जो सप्तम भाव और सप्तम भावस्थ नवांश इन दोनोंमे और इन दोनोंके स्वामियोंसे द्वितीय स्थानमेंभी उपपदसे द्वितीय स्थानमें कहेहुए फलही जानने ॥ २३ ॥

सोई वृद्धकारिकामें कहा है—

सप्तमेशा द्वितीयस्थेऽप्येवं फलमुदाहृतम् ॥

अर्थ—सप्तमेशमे द्वितीयस्थके विषेभी इसी प्रकार फल कहना ॥ २३ ॥

बुधशनिशुके चानपत्यः । २४ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे जो सप्तम भाव और सप्तमभावस्थ नवांश इन दोनोंसे और दोनोंके स्वामियोंमे द्वितीयस्थानमें बुध शनि और शुक यह तीनों स्थित हों तो वह पुरुष सन्तान हीन होताहै ॥ २४ ॥

अब सप्तम भावादिसे पञ्चम स्थानका फल कहते हैं—

पुत्रेषु रविराहुगुरुभिर्वहुपुत्रः । २५ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे जो सप्तम भाव और सप्तम भावस्थ नवांश इन दोनोंमे और इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चमस्थानमें सूर्य और बृहस्पति तथा राहु होयें तो वह पुरुष बहुतमे पुत्रोंवाला होता है ॥ २५ ॥

अब एक पुत्रयोग लिखते हैं—

चन्द्रेण चैकपुत्रः । २६ ।

अर्थ—और जिसकी कुण्डलीमें उपपदमे जो मनम

भावादि तिनसे पञ्चमस्थानमें केवल चन्द्रमा होय तो उस पुरुषके एकही पुत्र होता है ॥ २६ ॥

अब उक्तस्थानसे विलम्बात्पुत्रयोग कहते हैं—

मिश्रे विलम्बात्पुत्रः । २७ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीमें उपपदसे सप्तम भावादिसे पञ्चमस्थानमें पुत्रदायक और पुत्रनाशक सम्पूर्ण ग्रह मिलकर स्थित हों उसके विलम्बसे पुत्रोत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥

अब दत्तकपुत्रयोग लिखते हैं—

कुजशानिभ्यां दत्तपुत्रः । २८ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदसे सप्तम भाव और सप्तम भावस्थ नवांश इन दोनोंसे तथा इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चमस्थानमें भाँम और शनिधर स्थित हों तो वह पुरुष दत्तकपुत्र लेनेवाला होता है ॥ २८ ॥

अब अन्यरीतिसे बहुपुत्रयोग लिखते हैं—

ओजे बहुबहुपुत्रः । २९ ।

अर्थ—जिसके उपपदसे सप्तम भावादिसे पञ्चमस्थानमें विषम राशि हो वह पुरुष अनेक पुत्रवाला होता है ॥ २९ ॥

अब अल्प सन्तानियोग लिखते हैं—

युग्मेऽल्पप्रजः । ३० ।

अर्थ—और यदि पूर्वोक्त स्थानमें सम राशि होय तो वह पुरुष थोड़ी सन्तानवाला होता है ॥ ३० ॥

अब पूर्वोक्त स्थानमें विशेष रीति लिखते हैं—

गृहक्रमात्कुक्षितदीशपञ्चमांशग्रहेभ्य-

श्वेवम् । ३१ ।

अर्थ—गृहक्रमसे अर्थात् जन्मलग्नसे जिस प्रकार द्वादश भावोंका विचार होता है, विसी प्रकार उपपद और उपपदका स्वामी इन दोनोंसे, तथा पञ्चम भाव और पञ्चम भावस्थ नवांश और इन दोनोंके स्वामी ग्रहोंसेभी पूर्वोक्त फलका विचार करना चाहिये ॥ ३१ ॥

अब भ्रातृनाशयोग लिखते हैं—

भ्रातृभ्यां शनिराहुभ्यां भ्रातृनाशः । ३२ ।

अर्थ—जिस पुरुषके उपपद और उपपदका स्वामी इन दोनोंसे तृतीय अथवा एकादशस्थानमें यदि शनैश्वर और राहु स्थित हों तो उस पुरुषके भ्राताका मरण होवै ३२

अब मातृगर्भनाशयोग लिखते हैं—

शुक्रेण व्यवहितगर्भनाशः । ३३ ।

अर्थ—यदि उपपद और उपपदके स्वामीसे तृतीय अथवा एकादश स्थानमें शुक्र स्थित हो तो माताके व्यवहित अर्थात् पहिले और पिछले गर्भोंका नाश होता है ३३

+ यहां ऐसी शक्ता होती है कि सूत्रमें तो उपपद और उपपदका नामही नहीं फिर अर्थमें कहाँसे आए ? तहाँ कहते हैं कि गृह क्रमादि इत्यादि ऊपरके सूत्रमेंसे 'कुक्षितदीश' पदका ग्रहण करा है. यदि कहो कि 'कुक्षितदीश' पद तो समासमें पड़ा है और समासके एक अंशकी अनुवृत्ति हो नहीं सकती, तहाँ कहते हैं कि अन्य पदोंसे आनुविचार हो नहीं सक्ता इसकारण यहां समासके एक अंशकी भी अनुवृत्ति हो जायगी ॥ * यदि तृतीय स्थानमें शनि और राहु हो तो कनिष्ठ भ्राताका और एकादश स्थानमें हो तो ज्येष्ठ भ्राताका नाश होता है ॥ * अर्थात् यदि तृतीयस्थानमें शुक्र हो तो पहिले और एकादशस्थानमें हो तो पिछले गर्भोंका नाश होता है ॥

अब अन्य भावसे मातृगर्भनाशयोग लिखते हैं—

· पितृभावे शुक्रदृष्टेऽपि । ३४ ।

अर्थ—लग्नके विषे अथवा लग्नके अष्टम स्थानके विषे शुक्रकी दृष्टि होय तबभी माताके व्यवहित गर्भोंका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अब बहुभ्रातृयोग लिखते हैं—

कुजगुरुचन्द्रबुधैर्वहुभ्रातरः । ३५ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपद और उपपदके स्वामीसे तृतीय अथवा एकादश स्थानमें भौम, बृहस्पति चन्द्रमा और बुध यह चारों ग्रह स्थित हों तो उसके बहुतें भ्राता होते हैं ॥ ३५ ॥

शन्याराभ्यां दृष्टे यथा स्वं भ्रातृनाशः । ३६ ।

अर्थ—जिस पुरुषके उपपद और उपपदसे तृतीय और एकादश स्थानमें क्रमसे शनि और भौमकी दृष्टि होय तो यथाक्रम भ्रातृनाश होता है, अर्थात् तृतीय स्थानपर शनि और भौमकी दृष्टि होय तो लग्नु भ्राता नाश और एकादश-स्थानपर हो तो ज्येष्ठ भ्राताका नाश तथा दोनों स्थानोंपर उक्तग्रहोंकी दृष्टि हो तो कनिष्ठ और ज्येष्ठ दोनों भ्राताओंका नाश होता है ॥ ३६ ॥

· शनिना स्वमात्रशेषश्च । ३७ ।

अर्थ—जिसकी कुण्डलीमें उपपद और उपपदके स्वा-

* यदि तृतीय स्थानमें भौमादि ग्रह हों तो कनिष्ठ भ्राता और एकादशस्थानमें भौमादि ग्रह हों तो ज्येष्ठ भ्राता अधिक होते हैं ॥

मीसे तृतीय और एकादश स्थानमें शनिकी स्थिति होय तो सर्व नाश हो जाता है, केवल अपने आपही शेष रह-जाता है ॥ ३७ ॥

अन भगिनीबाहुल्ययोग लिखते हैं—

केतौ भगिनीबाहुल्यम् । ३८ ।

अर्थ—यदि पूर्वोक्तस्थानमें केतु स्थित हो तो उसके भगिनी बहुत होती हैं ॥ ३८ ॥

लाभेशाद्भाग्यभे राहौ दंष्ट्रा वा । ३९ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी जन्मकुण्डलीके विषे उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय राशिके विषे राहु स्थित होय तो उस पुरुषकी दाढ़ बड़ी होती है ॥ सोई वृद्धकारिकाओंमें भी कहा है—

“सप्तमेशात्तृतीयस्थे राहौ मूकः खले स्थिते ।

अदन्तोऽधिकदन्तो वा दंष्ट्रायुक्तोऽथवा भवेत् १

पवनव्याधिमान् केतौ यदा स्यादस्फुटोक्तिमान्

तत्र नानाग्रैर्हर्षेण मिश्रं फलमुदाहृतम्” । २ ।

अर्थ—यह है कि जिसके उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय राशिमें राहु स्थित हो यह पुरुष गूंगा अथवा बड़ी ठोड़ी-वाला होता है. और यदि पूर्वोक्त स्थानमें केतु स्थित होय तो वातरोगवाला अथवा स्पष्ट न बोलनेवाला अर्थात् बोलता होता है, और यदि मिश्रित यह स्थित हो तो मिश्रित फल होता है ॥ ३९ ॥

केतौ स्तव्यवाक् । ४० ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय स्थानमें केतु होय वह स्वधवाक् (तोतला) होताहै ॥ ४० ॥

मन्दे कुरूपः । ४१ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीमें उपपदके सप्तमेशसे द्वितीय स्थानमें शनैश्वर स्थित हो वह कुरूप होताहै ॥ ४१ ॥

स्वांशवशाद्गौरनीलपीतादिवर्णः । ४२ ।

अर्थ—जिस नवांशके विषे आत्मकारक स्थित हो उस नवांशका जो वर्ण स्वभावसेही अन्य जातग्रन्थोंके विषे वर्णन करा है, वही गौर नील और पीत आदि वर्ण कुण्डलीवालेका होताहै, इस प्रकार पितृकारकादिके नवांशसे उनकाभी वर्ण जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

अमात्यानुचरादेवताभक्तिः । ४३ ।

अर्थ—अमात्यकारक ग्रहमे जो ग्रह अंश अथवा कलाओंकरके न्यून हो, उसमे देवताकी भक्तिका विचार करना चाहिये, अर्थात् अमात्यकारकसे न्यून ग्रह देवताकी भक्ति करानेवाला होताहै, वह यदि पापग्रह होय तो क्रूर देवतामें भक्ति होतीहै, और शुभ होय तो देवतामें भक्ति होतीहै, और उच्चका या अपनी राशिका होय तो दृढ़ भक्ति होती है, तथा नीचका होय तो अस्थिर (चलायमान) भक्ति होतीहै ॥ ४३ ॥

अथ जारजयोग लिखते हैं—

स्वांशे केवलपापसम्बन्धे परजातः । ४४ ।

अर्थ—आत्मकारकके नवांशके विषे शुभ ग्रहोंको छोड़ केवल पापग्रहोंका ही सम्बन्ध होय तौ वह पुरुष जारज होताहै ॥ ४४ ॥

पूर्वांक सूचके विषयमें बाधक लिखते हैं—

नात्र पापान् । ४५ ।

अर्थ—और यदि आत्मकारक पापग्रह हो तौ यह फल नहीं होताहै, अर्थात् आत्मकारकसे अन्य पापग्रहका सम्बन्ध होय तबहीं पूर्वांक फल होता है, आत्मकारकके पापग्रह होनेमें नहीं, और किन्हीका ऐसा मत है कि अष्टम स्थानमें पापग्रह हो तौभी उक्त फल नहीं होताहै ॥ ४५ ॥

शानिराहुभ्यां प्रसिद्धिः । ४६ ।

अर्थ—पूर्वांक जारज योगमें शनैश्वर और राहु दृष्टि-योग पदुर्ग करके योगकारक हों तौ जारसे उत्पन्न होनेकी प्रसिद्धि होजाती है ॥ ४६ ॥

गोपनमन्येभ्यः । ४७ ।

अर्थ—शनैश्वर और राहुको छोड़कर अन्य पापग्रह योगकारक हों तौ जारज (व्यभिचार करके अन्य पुरुषके वीर्षमें उत्पन्न हुए) पुरुषका जारसे उत्पन्न होना गुप्त रहताहै ॥ ४७ ॥

शुभवर्गेष्ववादमात्रम् । ४८ ।

अर्थ—पापग्रह योगवदक हों और कारकांशोंमें शुभग्रहोंके पदुर्गका सम्बन्ध होय तौ जारज योगका कटहू मात्र होय, वास्तवमें जारज न होय ॥ ४८ ॥

अथ कुलमुख्ययोग लिखते हैं—

द्विग्रहे कुलमुख्यः । ४९ ।

अर्थ—जिस पुरुषकी कुण्डलीके विषे आत्मकारकके नवमांशमें दो ग्रहोंकी स्थिति होय, वह अपने कुलमें मुख्य होता है ॥ ४९ ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपधणीनायां
जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां प्रथमाध्याय-
स्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

नहाँ प्रथम आयुदां निर्णय लिखते हैं—

आयुः पितृदिनेशाभ्याम् । १ ।

अर्थ—लग्नका स्वामी और अष्टम स्थानका स्वामी इन दोनोंसे आयुका विचार करना चाहिये ॥ १ ॥

नहाँ प्रथम दीर्घांपुयोग लिखते हैं—

प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम् । २ ।

अर्थ—यदि लग्नेश और अष्टमेश यह दोनों प्रथम कहिये घर राशि गणिके विषे स्थित हों, अथवा उत्तर कहिये स्थिर राशि दिस्वभाव गणिके विषे स्थित हों तो दीर्घांपु योग होता है । अभिप्राय यह है कि जहाँ कहींभी घर राशि के विषे लग्नेश अष्टमेश दोनों स्थित हों नहाँ दीर्घांपु योग होता है, और स्थिरमें लग्नेश तथा दिस्वभाव राशिमें अष्टमेश हो तो अथवा दिस्वभाव राशिमें लग्नेश हो और स्थिर राशिमें अष्टमेश हो तब भी दीर्घांपुयोग होता है, और लग्नेश अ-

अमेश दोनों स्थिर राशिमेंही अथवा द्विस्वभाव राशिमें ही स्थित हों तब भी दीर्घायुयोग होता है ॥ २ ॥

अब मध्यमायुयोग लिखते हैं—

प्रथमद्वितीययोरन्त्ययोर्वा मध्यम् । ३ ।

अर्थ—यदि चरराशिमें लग्नेश होय, और स्थिर राशिमें अमेश होय, अथवा स्थिर राशिमें लग्नेश होय और चर राशिमें अमेश होय, वा द्विस्वभाव राशिके विषे ही दोनों हों तौ मध्यमायु योग होता है ॥ ३ ॥

अब अल्पायुयोग लिखते हैं—

मध्यमयोराद्यन्तयोर्वा हीनम् । ४ ।

अर्थ—स्थिर राशिके विषे लग्नेश और अमेश दोनों स्थित हों, अथवा चर राशिमें लग्नेश होय और द्विस्वभाव राशिमें अमेश होय, अथवा द्विस्वभाव राशिमें लग्नेश हो और चर राशिके विषे अमेश हो तौ अल्पायुयोग होता है ॥ ४ ॥

जिस प्रकार लग्नेश और अमेशकी चरादि राशिके विषे स्थितिसे दीर्घायु, मध्यमायु और अल्पायु योग कहे, तिसी कार अब लग्न और चन्द्रमासे दीर्घायु आदि योग कहेंगे ।

एवं मन्दचन्द्राभ्याम् । ५ ५ कि यदि

अर्थ—उपरोक्तरीतिसे अनुसारही है, लग्न और सेभी दीर्घायु, मध्यमायु और अल्पायु देण करना चाहि

अब तृतीय रीतिसे पूर्वोक्त योगों का प्रयोग कहेंगे

में लिखै और मध्यके तीन कोष्ठ स्थिरराशियोंके हैं उनमें क्रमसे द्विस्वभाव, चर स्थिर इन तीनोंके चिन्ह (३- १- २) लिखै, और नीचेके तीन कोष्ठ द्विस्वभाव राशिके हैं, उनमें क्रमसे स्थिर, द्विस्वभाव चर इन तीनोंके चिन्ह (२- ३- १) लिखै, और फिर तीनोंमें क्रमसे दीर्घ, मध्य, अल्प लिखै तब गस्तार स्पष्ट होताहै ॥ ६ ॥

सम्वादात्प्रामाण्यम् । ७ ।

अर्थ—यदि उपरोक्त लग्नेश और अष्टमेशसे लग्न और चन्द्रमासे, तथा जन्मलग्न और होरालग्नसे, इन तीनों रीतियोंसे एकही प्रकारका आयुर्दाय निश्चय होता होय, तब तब कुछ सन्देह नहीं, परन्तु दो रीतियोंसे एक प्रकारका आता होय और तीसरी रीतिसे भिन्न प्रकारका आता होय तब दो रीतिके अनुसार आनेवाला आयुर्वल ग्रहणीय होताहै ॥ ७ ॥

विसम्वादे पितृकालतः । ८ ।

अर्थ—यदि तीनों रीतियोंमें भिन्न भिन्न तीन प्रकारके आयुर्वल आवें तब जन्मलग्न और होरालग्नकी रीतिसे आयुर्वल आयुर्वलको ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

पितृलाभगे चन्द्रे चन्द्रमन्दाभ्याम् । ९ ।

अर्थ—तहाँ भी इतना ध्यान रखना चाहिये कि यदि लग्न अथवा सप्तम स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय तब, लग्न और चन्द्रमाकी रीतिसे आयुर्वल आयुर्वलका ग्रहण करना चाहिये ॥ ९ ॥ अल्पायु आदिके स्वरूप वृद्धकारिकामें कहे हैं

जायेंगे, जिस वैराशिककी गणित किया करनेमें उपरोक्त अमुक अंशसंख्याको बत्तीससे गुणा करके तीसका भाग देय तब जो लब्धि होय उसमें लग्नेश और अष्टमेशको अलग स्पष्ट करके लाएहुए वर्ष मासादि युक्त करके आधा कर ले. तब स्पष्ट होता है, वह यदि दीर्घायुका निकाला होय तौ चौंसठमें युक्त कर देय, और मध्यमायुका निकाला होय तौ बत्तीसमें युक्त कर देय, और यदि अल्पायुका निकाला होय तब तौ प्रथम खण्डके अभावसे वह ही जन्मकालसे लेकर वर्त्तमान आयु होता है, इसी प्रकार लग्नचन्द्रमा और जन्मलग्न, होरालग्नसे आएहुए आयुमें भी अन्तके खण्डको स्पष्ट करना चाहिये ॥ ९ ॥

अब पूर्वोक्त दीर्घायु आदि योगोंमें कुछ विशेषता लिखें हैं—

शनौ योगहेतौ कक्ष्याह्वासः । १० ।

अर्थ—यदि शनैश्वर योगकर्त्ता होय तौ एक कक्ष्याकी हानि होती है, अर्थात् शनैश्वरके योगकारक होनेपर दीर्घायु होय तौ मध्यमायु होती है, और मध्यमायु होय तौ अल्पायु होती है, और अल्पायु होय तौ कुछ आयु नहीं होती है १०

इस विषयमें मतान्तर लिखते हैं—

विपरीतमित्यन्ये । ११ ।

अर्थ—कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि ऊपरका कथन विपरीत है, अर्थात् शनिके योगकारक होनेपर ह्वास कदापि नहीं होता है, किन्तु दीर्घायु आदि जैसा होता है वैसाही रहता है ॥ ११ ॥

अपना मत लिखते हैं—

“द्वात्रिंशात्पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत् ।

चतुःषष्ट्याः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम्” ॥ १ ॥

इसका अर्थ यह है कि बत्तीस ३२ वर्षकी अल्पायु, और चौसठ ६४ वर्षकी मध्यमायु, तथा उससे आगे दीर्घायु कही जाती है ॥ १ ॥

उपरोक्त तीन प्रकारकी आयु आनेपर स्पष्ट करनेकी रीति भी वृद्धकारिकाओंके बिषे कही है—

“पूर्णमादौ हानिरन्तेऽनुपातो मध्यतो भवेत् ।

राशिद्वयस्य योगार्द्धे वर्षाणां स्पष्टमुच्यते ॥ १ ॥

एवं द्विकानां संचिन्त्य त्रयाणां सूत्रवर्त्मनि” ॥

अर्थ—यदि पूर्वोक्त रीतियोंसे जो आयुनिर्णय किया जाय, उसमें यदि दीर्घायु योग आवै तो मध्यमायुके भोग-पर्यन्त तो कुछ सन्देहही नहीं, मध्यमायुसे आगे दीर्घायुके बत्तीस वर्षके खण्डमेंसे कितनी आयु ग्रहण करनी चाहिये इस सन्देहको निवृत्त करनेके अर्थ यह श्लोक है, तहाँ लग्नेश और अष्टमेश दोनों जिस राशिमें हों, उस राशिके यदि आरम्भमें हों तो वह दीर्घायुका खण्ड पूर्ण ही होता है, और यदि जिस राशिमें हों उसके अन्तमें हों तो उस खण्डका नाश होता है, यदि उस राशिके मध्यमें हों तो त्रैराशिकके द्वारा दीर्घायुखण्डका एक देश ग्रहण करना चाहिये, वह त्रैराशिक इस प्रकार करे कि यदि तीस अंशों करके ३२ वर्ष भोगे जाते हैं तो अमुक अंश संख्या (जिस राशिपर लग्नेश और अष्टमेश हों उस राशिके जितने अंश संपूर्ण होते हैं उस अंकसंख्या) करके कितने वर्ष भोगे

पुरुषकी मृत्यु होती है; तथा द्वारराशि और द्वारराशिका स्वामी मलिन होय अर्थात् पापग्रहकी दृष्टि या योगवाला होय तौ द्वार और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामे मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

शुभग्रयोगान्न । १६ ।

अर्थ—और यदि द्वारवाह्य तथा द्वारेश शुभग्रहकी दृष्टियोग करके युक्त हों तौ द्वारवाह्य और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामें मृत्यु नहीं होती है ॥ १६ ॥

रोगेशे तुङ्गे नवांशवृद्धिः । १७ ।

अर्थ—यदि शुभग्रहकी दृष्टि योगादि नहोकरभी जन्मलग्नसे अष्टमेश उच्चका होय तौ मृत्युयोग होनेपर भी नौ वर्ष आयु बढ़ जाती है ॥ १७ ॥

तत्रापि पदेशदशान्ते पदनवांशदशायां

पितृदिनेशत्रिकोणे वा । १८ ।

अर्थ—जिस नवांशकी वृद्धिमें लग्नास्तुष्टका जो स्वामी उसकी आश्रयीभूत राशि अर्थात् जिस राशिमें लग्नास्तुष्ट पदका स्वामी स्थित हो उस राशिकी दशाके अन्तमें मरण होता है, अथवा जन्म लग्नास्तुष्ट पदके नवांशकी दशामें मरण होता है, वा लग्नेश और अष्टमेशसे जो त्रिकोण अर्थात् लग्न पंचम और नवम इनमेंसे किसी राशिकी दशामें मरण होता है ॥ १८ ॥

अब अन्य रीतिसे आपूर्वत्व निर्णय लिखते हैं—

सूत्राभ्यां न स्वर्क्षतुङ्गगे सौरेः । १२ ।

केवलपापहृग्योगिनि च । १३ ।

अर्थ—शनि अपनी राशिका हो अथवा अपने उच्चका होय, तथा शुभग्रहकी दृष्टि और शुभग्रहके योग रहित—केवल पापग्रहकी दृष्टि होय तब तौ कक्ष्या ह्रास नहीं होता है, अन्यथा तौ होताही है ॥ १२ ॥ १३ ॥

पितृलाभगे गुरौ केवलशुभहृग्योगिनि

च कक्ष्यावृद्धिः । १४ ।

अर्थ—यदि लग्न वा सप्तमस्थानमें आयुर्वल योगकारक बृहस्पति होय और पापग्रहकी दृष्टि अथवा योग न हो, केवल शुभग्रह मात्रकी ही दृष्टि अथवा योग होय तौ कक्ष्याकी वृद्धि होती है, अर्थात् जिसकी अल्पायु हो उसकी मध्यमायु हो जाती है, और जिसकी मध्यमायु हो उसकी दीर्घायु हो जाती है, और जिसकी दीर्घायु हो उसको ९६ वर्षसे अधिक अवस्था होती है ॥ १४ ॥

मलिने द्वारवात्येनवांशे निधनं द्वारद्वा-

रेशयोश्च मालिन्ये । १५ ।

अर्थ—जिस पुरुषके द्वार और बाह्य मलिन हों अर्थात् स्वयं पापग्रह हों या पापग्रहकी दृष्टि और योग करके सहित हों तौ द्वार और बाह्य राशिकी नवांशदशाके विषे

* दशा श्रयो द्वार ततस्तावत्तिय बाह्यम् ॥ इत्यादि आगे द्वितीयाध्यायके चतुर्थ पादमें द्वितीय और तृतीय सूत्रके विषे, द्वार-और बाह्यका स्वल्प लिखेगे ॥

पुरुषकी मृत्यु होती है; तथा द्वारराशि और द्वारराशिका स्वामी मलिन होय अर्थात् पापग्रहकी दृष्टि या योगवाला होय तो द्वार और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामे मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

शुभदृष्ट्योगान्न ॥ १६ ॥ २-१-१५

अर्थ—और यदि द्वारवाह्य तथा द्वारेश शुभग्रहकी दृष्टियोग करके युक्त हों तो द्वारवाह्य और द्वारेशके आश्रित नवांशकी दशामे मृत्यु नहीं होती है ॥ १६ ॥

रोगेशे तुङ्गे नवांशवृद्धिः ॥ १७ ॥ २-१-१६

अर्थ—यदि शुभग्रहकी दृष्टि योगादि नहोकरभी जन्मलग्नसे अष्टमेश उच्चका होय तो मृत्युयोग होनेपर भी नौ वर्ष आयु बढ़ जाती है ॥ १७ ॥

तत्रापि पदेशदशान्ते पदनवांशदशायां पितृदिनेशत्रिकोणे वा ॥ १८ ॥ २-१-१७

अर्थ—जिस नवांशकी वृद्धिमें लग्नारूढ़का जो स्वामी उसकी आश्रयीभूत राशि अर्थात् जिस राशिमें लग्नारूढ़ पदका स्वामी स्थित हो उस राशिकी दशाके अन्तमें मरण होता है, अथवा जन्म लग्नारूढ़ पदके नवांशकी दशामें मरण होता है, वा लग्नेश और अष्टमेशसे जो त्रिकोण अर्थात् लग्न पंचम और नवम इनमेंसे किसी राशिकी दशामें मरण होता है ॥ १८ ॥

अब अन्य रीतिसे आयुर्वल निर्णय लिखते हैं—

पितृलाभरोगेशे प्राणिनि कण्ठकैादिस्थे

स्वतश्चैवं त्रिधा । १९ ।

अर्थ—उग्रसे और सतम स्थानसे जो अष्टम स्थानके स्वामी हों, उन दोनोंमें जो बलवान् हो वह उग्रादि केन्द्रमें होयें तौ दीर्घायु योग होता है, और पणफरस्थानमें होयें तौ मध्यमायु योग होता है, और आपोक्लिममे स्थित होयें तौ अल्पायुयोग होता है, इसी प्रकार आत्मकारक और सतम स्थानसे अष्टम स्थानके जो स्वामीहों उन दोनोंमें जो बली हो वह उग्रादि केन्द्रमें होय तौ दीर्घायु होती है, पणकरमें होयें तौ मध्यमायु होती है, और आपोक्लिममें होयें तौ अल्पायु होती है ॥ १९ ॥

योगात्सप्तमेस्वस्मिन्विपरीतम् । २० ।

अर्थ—योग जो जन्मलग्नसे सप्तमस्थान तिससे सप्तम और नवमस्थानमें यदि आत्मकारक होयें तौ “पितृलाभेत्यादि” ऊपरके सूत्रमें कहे हुए आयुर्वल योग नहीं होते हैं; किन्तु विपरीत हो जाते हैं, अर्थात् दीर्घायु होय तौ मध्यमायु, और मध्यमायु होय तौ अल्पायु, तथा अल्पायु होय तौ हीनायु होजाता है; और कोई आचार्य अन्य प्रकारका विपरीत्य कहते हैं कि दीर्घायु होयतौ अल्पायु होजाता है, और अल्पायु होयतौ दीर्घायु हो जाता है, और मध्यमायु हो तो मध्यमायुही रहजाता है, आयुर्दापके विषयमें वृद्धोंने कुछ विशेष रीति कही है—

एको ऽष्टमेशः स्वोच्चस्थः पर्यायार्द्धं प्रयच्छति ।
 नीचस्थो नाशयेत्पर्यायार्द्धमायुषि निश्चिते ॥ १ ॥
 नीचरन्ध्रेश संयुक्ता पर्यायार्द्धं पृथक् पृथक् ।
 ग्रहा विनाशयन्त्येवं निर्णीते परमायुषि ॥ २ ॥
 उच्चरन्ध्रेशसंयुक्तग्रहैः प्रत्येकमुन्नयेत् ।
 एकैकमर्द्धपर्यायं परमायुषि निश्चिते ॥ ३ ॥

अर्थ—ऊपरजो कह आप हैं कि “आयुः पितृदिने-
 शाभ्याम्” लग्नेश और अष्टमेश से आयुका निर्णय करे,
 तहाँ अष्टमेश यदि उच्चका होय तौ “नाथान्ताः समाः
 प्रायेण” इस प्रथमाध्यायके प्रथम पादके अठारहसर्व सूत्रा-
 नुसार अपनी दशाके आधे वर्षप्रमाण आयु अधिक देता
 है, और अष्टमेश नीचस्थ होय तौ अपनी दशाके आधे वर्ष
 प्रमाण आयुको नाश कर देता है; इसी प्रकार उच्चस्थ
 और नीचस्थ अष्टमेश ग्रहके साथ स्थित अन्य ग्रहभी उच्च-
 स्थ अष्टमेशयुक्त हों तौ उक्त सूत्रके अनुसार अपनी दशाके
 आधे वर्ष प्रमाण आयुकी वृद्धि करते हैं. और नीचस्थ अष्ट-
 मेश युक्त हों तौ उक्त सूत्रके अनुसार अपनी दशाके आधे
 वर्ष प्रमाण आयु हीन कर देते हैं, इसी प्रकार लग्नेश और
 लग्नेश संयुक्त ग्रहभी उच्च नीच आदि गुणसे, आयुकी वृद्धि
 और ह्रास करते हैं ॥ २० ॥

इस प्रकरणमें ग्रहोंका वल विस्मयकारका ग्रहणकरा जाता
 है सो लिखते ~

१ राशितः प्राणः । २१ ।

अर्थ—यहाँ राशिसे बलग्रहण करना चाहिये, अर्थात् अंशोंकी अधिकतासे बल इस प्रकरणमें नहीं ग्रहण करै २१

अब अन्यरीतिसे मध्यमायुयोग कहते हैं—

रोगेशयोः स्वत एक्ये योगे वा मध्यम् । २२ ।

अर्थ—लग्नसे और सप्तमस्थानसे अष्टमेश आत्मकारकही हो, अथवा आत्मकारक करके संयुक्त होय तौ “पितृ-लाभेत्यादि” सूत्रसे यदि दीर्घायुभी आईहो तबभी मध्यमायुही होती है ॥ अन्य जातकशास्त्रोंमें लग्नका और इस ग्रन्थमें कारक का प्राधान्य होनेके कारण अष्टमेशके योगसे आयुका ह्रासही होता है ॥ २२ ॥

पितृलाभयोः पापमध्यत्वे कोणपाप

योगे वा कक्ष्याह्रासः । २३ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम यह दोनो यदि पापग्रहोंके मध्यमें हों तौ कक्ष्याका ह्रास होता है, (लग्न कुण्डलीके विषे द्वितीय और द्वादशस्थानमें तथा पष्ठ और नवमस्थानमें पापग्रह हों तौ यह योग होता है), और लग्न, सप्तमके विषे, तथा त्रिकोण इन सब (लग्न-पञ्चम-और नवम स्थान) के विषे पापग्रह हों तौ भी कक्ष्या ह्रास होता है २३

स्वस्मिन्नप्येवम् । २४ ।

अर्थ—इसीप्रकार आत्मकारकराशिके और आत्मकारकसे सप्तमराशिके पापग्रहोंके मध्यमें होनेपर और आत्मकारक, तथा आत्मकारकसे सप्तमस्थान त्रिकोण इन

सब स्थानोंमें पापग्रहों के स्थित होनेपरभी कक्षपा ह्रास होता है ॥ २४ ॥

२-१-२४

तस्मिन्पापे नीचेऽतुङ्गेऽशुभसंयुक्ते च । २५ ।

अर्थ—वह आत्मकारक स्वयं पापग्रह हो या नीच हो तो भी कक्षपाह्रास होता है, और वह आत्मकारक पापग्रह होकर तथा पापग्रहसंयुक्त होकर उच्चस्थानसे अन्य स्थानमें होय तो भी कक्षपाह्रास होता है ॥ २५ ॥

अन्यदन्यथा । २६ । २-१-२६

अर्थ—अन्यथा, अर्थात् उग्र और सतम तथा आत्मकारक और आत्मकारकसे सतमस्थान शुभग्रहोंके मध्यगतहो, और आत्मकारकसे त्रिकोण स्थानमें शुभग्रह हों, और आत्मकारक स्वयं शुभग्रह हो नीच न हो शुभग्रह होकर और शुभग्रह संयुक्त होकर उच्चका पड़ा हो तो कक्षपावृद्धि होती है ॥ २६ ॥

गुरौ च । २७ । २-१-२७

अर्थ—इसी प्रकार गुरुसे द्वितीय द्वादश और पष्ठ तथा अष्टमस्थानमें पापग्रह हों तो कक्षपाका ह्रास होता है और गुरु नीचस्थ हों उच्चस्थ न हों अशुभ ग्रहकरके युक्त हों तो भी कक्षपाह्रास होता है, और अन्यथा गुरुमे द्वितीय, द्वादश, पष्ठ, और अष्टमस्थानके सिधे शुभग्रह हों, और गुरुसे त्रिकोण स्थानमें शुभग्रह हों तथा गुरु नीचस्थ न हों किन्तु शुभग्रहसंयुक्त होकर उच्चका होय तो कक्षपावृद्धि होती है ॥ २७ ॥

पूर्णेन्दु शुक्रयोरेकराशिवृद्धिः । २८ ।

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें शुभग्रहका योग होनेपर पूर्णन्द और शुक्रकाभी योग होय तौ कक्ष्याकी वृद्धि न होकर एक राशिकीही वृद्धि होती है ॥ २८ ॥

१. शनौ विपरीतम् । २९ ।

अर्थ—पापग्रहोंके योगसे जो कक्ष्यान्हास कहा है तहां यदि पूर्वोक्त स्थानोंमें शनिका योग होय तौ कक्ष्याका न्हास न होकर एक राशिकाही न्हास होता है ॥ २९ ॥

अथ मरणकालके जाननेका उपाय लिखते हैं—

स्थिरदशायां यथाखण्डं निधनम् । ३० ।

अर्थ—पूर्वोक्त दीर्घायु, मध्यमायु, अल्पायु, इन तीनों मेंसे जिस पुरुषका जो आयु हो उसके तीनखण्ड करै उन तीनों मेंसे जो भाग मरणका हो वह भाग जब मारक राशिकी स्थिर दशा (दशाका प्रमाण “शनि नन्द पायकाः” इत्यादि आगे कहेंगे) के विपे मरण होता है। और यदि मरणके खण्डसे प्रथमही मारकराशिकी स्थिर दशा आजाय तौ मरण नहीं होता है, किन्तु क्लेश होता है

तत्रर्क्षविशेषः । ३१ ।

अर्थ—यद्यपि दीर्घायु, मध्यमायु, और अल्पायुके भेद से मरणकालका साधारण निश्चय हुआ, परन्तु विशेषतः निर्णय करानेवाला कोई राशि विशेष है ॥ ३१ ॥

उस राशिका स्वरूप दिखाते हैं—

पापमध्ये पापकोणे रिपुरोगयोः

पापे वा । ३२ ।

अर्थ—दो पापग्रहोंके मध्यमे जो राशि हो उस राशि-की दशाके विषे, और प्रथमदशाको भोग करनेवाले राशिसे पापग्रहयुक्त पञ्चम नवम द्वादश और अष्टम राशिकी दशा-के विषे मरण होता है, सोई वृद्धकारिकामें भी कहा है ३२

“ शुभ मध्ये मृतिर्नैव पापमध्ये मृतिर्भवेत् ”

अर्थ—यह है कि शुभग्रहोंके मध्यगत राशिकी दशामें मृत्यु नहीं होती है, किन्तु पापग्रहोंके मध्यगत राशिकी दशामें मृत्यु होती है ॥ और कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि “लघ्नात्कारकाद्वा पापाक्रान्तत्रिकोणदशायां पापक्रान्त-द्वादशाष्टमराशिदशायां वा निधनं भवति”—अर्थात् लघुसे या आत्मकारकसे पापग्रहयुक्त त्रिकोणकी दशामें, अथवा पापग्रहयुक्त द्वादश और अष्टम राशिकी दशाके विषे मरण होता है ॥ ३२ ॥

तदीशयोः केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ

वा । ३३ ।

अर्थ—द्वादश और अष्टम राशिके स्वामियोंपर अन्य ग्रहोंकी दृष्टि न हो करके बलक्षीण चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि होय तब द्वादश और अष्टम राशिकी दशामें मरण होता है ॥ ३३ ॥

बहुवर्षव्यापिनी दशामें मरणकालका निर्णय लिखिते हैं—
तत्राप्रायक्षीरिनाथदृश्यनवभागाद्वा । ३४ ।

अर्थ—पूर्वोक्त मारक राशिपौर्णमासी प्रथम दशाश्रित राशिका स्वामी और उससे पञ्चराशिका स्वामी इन दोनों ग्रहोंकी नवांशकुण्डलीमें जिस नवांशपर दृष्टि पड़े उस नवांश-राशिकी अन्तर्दशामें मरणहोता है ॥ ३४ ॥

अब निर्याण विशेषका कथन करनेके निमित्त रुद्र-ग्रह लिखते हैं—

पितृलाभभावेशप्राणी रुद्रः । ३५ ।

अर्थ—रुद्र और सप्तम से जो अष्टमेश तिन दोनों अष्टमेशों में जो बलवान हो वह रुद्रसंज्ञक ग्रह होता है ४५॥

अब दूसरा रुद्रग्रह लिखते हैं—

अप्राण्यपि पापदृष्टः । ३६ ।

अर्थ—रुद्रसे अष्टम और सप्तमसे अष्टमस्थानका स्वा-मी इन दोनों में जो निर्बल हो वह भी पापग्रहकी दृष्टि होय तौ रुद्रसंज्ञक होता है ॥ ३६ ॥

माणी और अमाणी दो प्रकारके रुद्रग्रह कहे तहाँ प्रथम माणी (बली) रुद्रग्रहका फल लिखते हैं—

प्राणिनि शुभदृष्टे रुद्रशूलान्तमायुः । ३७ ।

अर्थ—बलवान् रुद्रग्रहको शुभग्रह देखताहोय तौ रुद्रग्रहसे प्रथम पञ्चम और नवमस्थानमें स्थित राशिकी दशाके विषे मरण होता है, या अल्प मध्य दीर्घायु भेदोंसे क्रमसे प्रथम द्वितीय और तृतीय भावसे नवम और पञ्चमस्थानमें स्थित राशिकी दशा पर्यन्त आयुदाय होता है, अर्थात् अल्पायु-योग होय तौ प्रथम भावसे नवम पञ्चमस्थानमें स्थित राशिकी दशा पर्यन्त आयुर्फल होता

है, मध्यमायु योग होय तौ द्वितीयस्थानसे इत्यादि ॥ ३७ ॥

तत्रापि शुभयोगे । ३८ ।

अर्थ—तिस्र द्वितीय रुद्रग्रहको शुभग्रहका योग हो तौ भी रुद्रशूलान्त अर्थात् रुद्रग्रहसे प्रथम नवम और पञ्चम-स्थानोंमें स्थित राशिकी दशामें मरण होता है ॥ ३८ ॥

व्यर्कपापयोगे न । ३९ ।

अर्थ—यदि रविके सिवाय अन्य पापग्रहों करके युक्त रुद्रग्रह होय तौ पूर्वोक्त फल नहीं होता है ॥ ३९ ॥

अब दोनो रुद्रग्रहोंके गुण विशेषोंसे फल कहते हैं—

मन्दारेन्दुदृष्टे शुभयोगाभावे पापयोगे-

ऽपिवा शुभदृष्टौ वा परंतः । ४० ।

अर्थ—सबल अथवा निर्बल रुद्रग्रहको भीम, शनि, और चन्द्रमा यह देखते हों, और शुभग्रहोंका योग न हो अथवा रुद्रसंज्ञक दोनों ग्रहोंको भीम, शनि, और चन्द्रमा यह देखते हों तथा पापग्रहोंकी दृष्टि हो, अथवा रुद्र-संज्ञक दोनों ग्रहोंको भीम, शनि, और चन्द्रमा यह देखते हों तथा शुभ ग्रहोंकी भी दृष्टि होय तौ योग होता है, और इन तीनों योगोंके पूर्ण होनेपर रुद्रग्रहसे प्रथम पञ्चम और नवमस्थानमें स्थित राशिकी दशासे आगे पर्यन्त आयु-बल होता है। इस प्रकरणमें शुभग्रह और पापग्रह बुद्धोंने कहे हैं, तद्यथा—

“ अर्कारमन्द फणिनः क्रमात्कूरा यथाश्रयम् ।

चन्द्रोऽपि कूर एवान्न कचिदङ्गारकाश्रये ॥१॥

गुरुध्वजकविज्ञा स्युर्यथा पूर्व शुभग्रहाः ।”

अर्थ—सूर्य, शनि, भौम, और राहु यह क्रमसे उत्तरोत्तर क्रूरराशिके विषे स्थित हों तो क्रूर होते हैं, और शुभराशिगत हों तो क्रूर नहीं किन्तु शुभही होते हैं; और चन्द्र-भाभी क्रूरराशिगत हो अथवा कहीं भौम के स्थानमें स्थित हो तो क्रूर होता है; और गुरु, केतु, शुक्र, तथा बुध यह सब ग्रह क्रमसे उत्तरोत्तर अर्थात् गुरुसे केतु, केतुसे शुक्र, शुक्रसे बुध यह सब ग्रह हों परन्तु क्रूरराशिके विषे स्थित हों तो क्रूर और शुभ राशिके विषे स्थित हों तो शुभ होते हैं ॥ सोई संग्रहरूपसे वृद्धकारिकाओंके विषे कहा है—

प्रत्येकं शुभ राशिस्थ उच्चस्थो वा बुधः शुभः ।

गुरुशुक्रौ च सौम्यस्थौ ततोऽन्यत्राशुभाः स्मृताः ॥

अर्थ—प्रत्येक शुभराशिके विषे स्थित या उच्चस्थ बुध शुभ होता है, और गुरु तथा शुक्र भौम शुभ राशिपोंके विषे स्थित हों तो शुभ होते हैं, अन्यत्र अशुभ होते हैं ॥४०॥

रुद्राश्रयेऽपि प्रायेण । ४१ ।

अर्थ—कदाचित् रुद्र ग्रहके आश्रित राशिमें भी प्रायः आयु समाप्त होजाती है, यहाँ “प्रायेण” के ग्रहण करनेसे मानीत होता है, रुद्राश्रित के प्रथम तथा अनन्तरभी आयु पूरी होती है ॥ वैद्योंने जो शूलमें आयुका विशेष निर्णय कराई सो लिखते हैं—

“पापमात्रस्य शूलत्वे प्रथमर्क्षे मृतिर्भवेत् ।

मिश्रे मध्यमशूलर्क्षे शुभमात्रेऽन्त्यमे मृतिः” ॥ १ ॥

अर्थ—यदि दोनों रुद्र पापग्रह हों तो प्रथम शूलमें

मरण होता है, और एक रुद्र पापग्रह हो तथा एक शुभग्रह हो तो मध्यम शूलमें मरण होता है, और यदि दोनो रुद्र शुभ ग्रह हों तो अन्य शूलमें मृत्यु होती है ॥ ४१ ॥

क्रिये पितरि विशेषेण । ४२ ।

अर्थ—मेघ जन्मलग्न होय तो विशेषकरके रुद्राश्रित राशिकी दशामें ही मरण होता है ॥ ४२ ॥

प्रथममध्यमोत्तमेषु वा तत्तदा-

चुपाम् । ४३ ।

अर्थ—अल्पायु मध्यमायु और दीर्घायु योगवाले पुरुषों की क्रमसे प्रथम, द्वितीय, और तृतीय रुद्रशूलके विषे मृत्यु होती है, ॥ ४३ ॥

स्वभावैशो महेश्वरः । ४४ ।

अर्थ—एक कहिये आत्मकारकसे भावेश कहिये अष्टम राशिका स्वामी महेश्वर ग्रह कहटाता है ॥ ४४ ॥

स्वोच्चे स्वगृहे रिपुभावेश-


प्राणी । ४५ ।

अर्थ—यदि आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी नीच उच्चस्थानमें या निजस्थानमें स्थित हो तो, द्वादश और

* कोईआचार्य इस सूत्रका “स्वोच्चे स्वगृहे रिपुभावेशे प्राणी” ऐसा भाव्यमानेहै, यहही ऐसा अर्थ करता, चाहिये कि आत्मकारक उच्च उच्च स्थानमें किसी अन्यग्रहकरके सहित स्थित हो तो आत्मकारकसे द्वादश और अष्टमस्थानके स्वामीमें जो युक्तान् हो वह महेश्वरसंज्ञक ग्रह होता है ॥

'अष्टमस्थानके' स्वामी 'ग्रहोंमें' जो बलवान् हो वह महेश्वर ग्रह होता है; और यदि दोनो तुल्यबल हों तो दोनो महेश्वरसंज्ञक ग्रह होते हैं ॥ ४५ ॥

पातालाभ्यां योगे स्वस्य तयोर्वा

 **रोगे ततः । ४६ ।**


अर्थ—पाताल कहिये केतु या राहुकरके युक्त आत्मकारक होय वा आत्मकारकसे अष्टमस्थानमें केतु या राहु होय तो उस आत्मकारकसे सूर्यादि क्रमके द्वारा गणना करनेसे जो ग्रह पष्ठ हो वह महेश्वरसंज्ञक होता है, और यदि ऐसे ग्रह दो तीन हों तो उनमें जो बलवान् हो वह महेश्वरसंज्ञक होता है, और यदि सबही बलवान् भी हों तो सबही महेश्वरसंज्ञक होते हैं ॥ ४६ ॥

अब ब्रह्मयोग कहते हैं—

प्रभुभाववैरीशप्राणी पितृलाभप्राणानु-

 **चरो विपमस्यो ब्रह्मा । ४७ ।**

अर्थ—लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो राशि बलवान् हो उससे पष्ठ-अष्टम-द्वादश इन राशियोंके स्वामियोंमें जो बलवान् हो, और लग्न तथा सप्तमराशिमें जो बलवान् हो, उसके पीछे जिस किसी विपमराशिके निपे स्थित ग्रह ब्रह्मसंज्ञक होता है, । लग्नके पीछेकी राशियें सप्तमादि द्वादशपर्यन्त हैं; और सप्तमके पीछेकी राशियें लग्नादि पष्ठपर्यन्त हैं ॥ ४७ ॥

 **ब्रह्मणि शनौ पातयोर्वा ततः । ४८ ।**

अर्थ—शनि-राहु-केतु इन तीनोंमेंसे किसीकी ब्रह्म-संज्ञा नहीं होती है, यदि इनमेंसे किसी ग्रहको ब्रह्मसंज्ञा प्राप्त होय तो उससे पञ्चग्रहकी ब्रह्मसंज्ञा जानै ॥ ४८ ॥

बहूनां योगे स्वजातीयः । ४९ । १-१

अर्थ—यदि अनेक ग्रहोंकी ब्रह्मसंज्ञाका योग होय तो सजातीयकी ब्रह्मसंज्ञा होती है, अर्थात् आत्मकारकके सि-वाय सबसे अधिक अंशवाले ग्रहकी ब्रह्मसंज्ञा होती है ॥ ४९ ॥

राहुयोगे विपरीतम् । ५० । १-१-१

अर्थ—यदि ब्रह्मसंज्ञक ग्रह राहुकरके युक्त होय तो उपरोक्त नियमका विपर्यय होता है, अर्थात् ब्रह्मसंज्ञक होने-वाले बहुतसे ग्रहोंमें जो सबसे कम अंशवाला हो वह ब्रह्म-संज्ञक होता है ॥ ५० ॥

ब्रह्मा स्वभावेशो भावस्थः । ५१ ।

अर्थ—आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी और आ-त्मकारकसे अष्टम स्थानमें स्थित ग्रह ब्रह्मसंज्ञक होता है ५१

विवादे बली । ५२ । १-१-१

अर्थ—यदि आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी और आत्मकारकसे अष्टमस्थानमें स्थित ग्रह दोनोंकोही यदि ब्रह्मसंज्ञा प्राप्त हो तो दोनोंमें जो बलवान् हो उसकी ही ब्रह्म-संज्ञा हो, अथवा सम्पूर्ण ब्रह्मसंज्ञक समान अंशवाले हों तो ग्रहीत राशिसे ग्रहयुक्तराशि बलवान् होता है और एक-ग्रहवाले राशिसे दो ग्रहवाला राशि बलवान् होता है. इत्यादि क्रममें जो बलवान् हो वह ब्रह्मसंज्ञक होता है ॥ ५२ ॥

अब ब्रह्म और महेश्वरग्रहका फल कहते हैं—
 ब्रह्मणो यावन्महेश्वरदर्शदशान्तेमायुः । ५३ ।

अर्थ—जिस राशिके विषे ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हो उस राशिकी दशासे लेकर महेश्वरसंज्ञक ग्रह जिस राशिमें हो उस राशिकी स्थिर दशा पर्यन्त आयु होता है ॥ ५३ ॥

अब महादशाकी जिस अन्तर्दशामें मरण हो उसका वर्णन करते हैं—

२-१-१४

तत्रापि महेश्वरभावेशत्रिकोणाब्दे । ५४ ।

अर्थ—तत्रापि कहिये महेश्वरराशिकी स्थिर दशाके विषे भी महेश्वरसंज्ञक राशिसे आठवें स्थानका जो स्वामी हो, उससे प्रथम-पञ्चम-और नवम राशिकी अन्तर्दशाके विषे मरण होता है ॥ ५४ ॥

अब दो सूत्रोंकरके मारक ग्रहोंका वर्णन करते हैं—

स्वकर्मचित्तरिपुरोगनाथप्राणी

२-१-५७ मारकः । ५५ ।

अर्थ—आत्मकारकसे जो कर्मचित्तरोगनाथ कहिये तृतीय-षष्ठ-द्वादश और अष्टमस्थानके स्वामी इनमें जो बलवान् हो, वही मारक (संज्ञक) ग्रह होता है यदि तृतीयादि सम्पूर्ण स्थानोंके स्वामी समानबल हों तौ सम्पूर्ण मारक होते हैं । वहाँ ऐसी शङ्का होती है कि-यदि अनेक ग्रह मारक हों नौ, किमकी दशाके विषे मरण हो ? तहाँ कहते हैं कि-तहाँ अल्पायु-मध्यमायु-और दीर्घायुके विचारसे जिसकी दशामें मरणकी सम्भावना हो, उसकीही दशा अथवा अन्तर्दशामें मरण कहना चाहिये, वहाँभी “चित्तरोगनाथः प्रायेण” अ-

थात् पष्ठस्थानका स्वामी भायः मारक होता है, सोई वृद्ध-
कारिकाके विषे भी कहा है—

“पष्ठाष्टमेशौ भवतो मारकावष्टमेश्वरः ।
प्रायेण मारको राशिदशास्वत्राविशेषतः ॥
पष्ठमे पापभृयिष्ठे पष्ठेशो मुख्यमारकः ।
पष्ठात्रिकोणगो वापि मुख्यमारक इष्यते ॥
मध्यायुपि मृतिः पष्ठे दशायामष्टमस्य वा ।
पष्ठात्रिकोणस्य पुनर्दीर्घाल्पविषये भवेत् ॥
पष्ठे बलयुते तस्य त्रिकोणे मृतिमादिशेत् ।
पष्ठेशश्चेदलाढ्यः स्यात्तत्रिकोणे मृतिं वेदेत् ॥
व्यवस्थेयं समस्तापि कारकादिदशास्वपि ।
बलिनः शुक्रशशिनोर्ग्राह्यं पष्ठाष्टमादिकम् ॥”

अर्थ—यदि पष्ठ और अष्टम दोनों स्थानके स्वामी मारक हों तो उन दोनोंमें अष्टमेश मुख्य मारक होता है, और यदि पष्ठस्थानमें पापग्रह अधिक स्थित हों तो पष्ठेशही मुख्य मारक होता है; और पष्ठस्थानसे नवम तथा पञ्चम-स्थानके स्वामीभी मुख्य मारक होते हैं, जिस पुरुषका मध्यमा-युग हो उसका मरण पष्ठ या अष्टमराशिकी दशामें हो-ता है, और जिसका दीर्घायु अथवा अल्पायु योग हो, उसका पष्ठस्थानसे नवम अथवा पञ्चम राशिकी दशामें मरण होता है; परंतु यहाँ इतना विचार करना चाहिये कि यदि पष्ठ-स्थान (राशि) बलवान् हो तब तो पष्ठस्थानसेही नवम प-ञ्चम राशिकी दशामें मरण होता है, और पष्ठस्थानका स्वा-मी बलवान् हो तो पष्ठेशमे नवम पञ्चम राशिकी दशामें

मरण होता है; यह सम्पूर्ण व्यवस्था कारकादि दशाओंमें भी जाननी, और कहीं लग्न और सप्तम इन दोनों राशिओंमें जो चलवान हो उससे पष्ठ या अष्टमराशिकी दशामें मरण होता है ॥ ५५ ॥

अब मारकग्रहका फल लिखते हैं—

२-१-५५ तद्वत्सदशायां निधनम् । ५६ ।

अर्थ—मारकग्रह जिस राशिमें स्थित हो अथवा जिस राशिका स्वामी हो उस राशिकीही चर अथवा स्थिर दशामें मरण होता है ॥ ५६ ॥

अब मारकमहादशाकी जिस अन्तर्दशामें मरण हो उसकी दिखाते हैं—

२-१-५६ तत्रापि कालाद्रिपुरोगचित्तनाथापहारे ५७ ।

अर्थ—तत्रापि कहिये मारकग्रहकी महादशामें भी, आत्मकारकसे जो सप्तमस्थान द्वादशेश-अष्टमेश-और पष्ठेशकी अन्तर्दशामें मरण होता है, तहाँभी यह विचार करना चाहिये कि द्वादशेशादिमें जो चलवान हो उसकी अन्तर्दशाके विषे मरण होता है; इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहा है कि—

“चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरागतः ।

स एव मारको राशिर्भवतीति विनिर्णयः ॥

बहुराशिसमावेशे चलवान् मारकः स्मृतः ॥”

अर्थ—“चरे चरस्थिर” इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारकी रीतिसे जो राशि आवै वहही मारक राशि होता है. इस प्रकार निर्णय है । यदि वेमे बहुत राशि आये तो उनमें जो चल-

वान् हो वह मारक होता है; तात्पर्य यह है कि जन्मलग्नेश और अष्टमेश, तथा जन्मलग्न और चन्द्रमा, या जन्मलग्न और होरालग्न दोनों जिस राशिके विषे स्थित हों वह राशि मारक होता है, यदि ऐसे अनेक राशि हों तब उनमें जो ब-
ली हो वह मारक होता है, तब उस राशिकी दशामें अथवा उस राशिका स्वामी जहाँ स्थित हो उस राशिकी दशामें मरण होता है । और कोई आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि—

“चर इत्यादिनायुर्यत्तत्समाप्त्युचितो भवेत् ।

यो राशिः स तु विज्ञेयो मारकः सूत्रसंमतः ॥ ”

अर्थ—चर इत्यादि श्लोककरके जो दीर्घ मध्यादि आयु आवे, और पूर्णमित्यादि श्लोकसे स्पष्ट होय, वह आयु जिस राशिमें समाप्त होय उस राशिको ही मारक जानै, यह अर्थही सूत्रसंमत है ॥

इति श्रीमुरादादावास्नव्यपण्डितरामस्वरूपप्रणीतायां
जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां द्वितीया-
ध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

अथ पिता आदिके मरणसमयका बोध करानेके निमित्त प्रथम पितृकारक आदिको वर्णन करते हैं—

रविशुक्रयोः प्राणी जनकः । १ ।

अर्थ—सूर्य और शुक्र इन दोनोंमें जो बलवान् हो वह पितृकारक होता है ॥ १ ॥

चन्द्रारयोर्जननी । २ ।

मरण होता है; यह सम्पूर्ण व्यवस्था कारकादि दशाओंमें भी जाननी, और कहीं लग्न और सप्तम इन दोनों राशियोंमें जो बलवान हो उससे पष्ठ या अष्टमराशिकी दशामें मरण होता है ॥ ५५ ॥

अब मारकग्रहका फल लिखते हैं—

तदृक्षदशायां निधनम् । ५६ ।

अर्थ—मारकग्रह जिस राशिमें स्थित हो अथवा जिस राशिका स्वामी हो उस राशिकीही घर अथवा स्थिर दशामें मरण होता है ॥ ५६ ॥

अब मारकमहादशाकी जिस अन्तर्दशामें मरण हो उसको दिखाते हैं—

तत्रापि कालाद्रिपुरोगचित्तनाथापहारे ॥ ५७ ॥

अर्थ—तत्रापि कहिये मारकग्रहकी महादशामें भी, आत्मकारकसे जो सप्तमस्थान द्वादशेश-अष्टमेश-और पष्ठेशकी अन्तर्दशामें मरण होता है, तहाँभी यह विचार करना चाहिये कि द्वादशेशादिमें जो बलवान हो उसकी अन्तर्दशाके विषे मरण होता है; इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहा है कि—

“चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरोगतः ।

स एव मारको राशिर्भवतीति विनिर्णयः ॥

बहुराशिसमावेशे बलवान् मारकः स्पृतः ॥”

अर्थ—“चरे चरस्थिर” इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारकी रीतिसे जो राशि आवै वहही मारक राशि होता है. इस प्रकार निर्णीत है । यदि जेमे बहुत राशि आवे तो उनमें जो बल-

अर्थ—पिता आदिकी आयु विचारनेमें अन्य कारक तथा अन्य रीतिसे कहेहुए निष्कर्षाण शूल दशा आदिका भी विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

अब पितृनिष्कर्षाणके विषयमें कुछ विशेषता लिखते हैं—

अर्कज्ञयोगे तदाश्रये लग्नमेपदशायां

पितुरित्येके । ८ । २ - २ - १

अर्थ—और कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि लग्नसे द्वादश राशिका स्वामी बुध या सूर्य हो, अर्थात् सिंह कन्या और मिथुन इन राशियोंमेंसे कोई एक राशि लग्नसे द्वादश-स्थानमें स्थित हो और उसके विषे सूर्य अथवा बुधका योग हो तब लग्नसे पञ्चम राशिकी दशाके विषे पिताका मरण होता है ॥ ८ ॥

अब बाल्यावस्थामेंभी माता पिताके मरणका योग कहते हैं कि—

व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग्द्वाद-

शाब्दात् । ९ । २ - २ - २

अर्थ—पितृकारक और मातृकारक बलवान् हों अथवा निर्बल हों और इनके विषे सूर्यका योग न हो, तथा अन्य पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो बारह १२ वर्षसे पहिले ही क्रमसे माता और पिताका मरण होता है ॥ ९ ॥

अब स्त्रीका निधनयोग कहते हैं कि—

गुरुशूले कलत्रस्य । १० ।

अर्थ—जिस राशिके विषे गुरुजी स्थिति हो उस रा-

अर्थ—चन्द्रमा और मङ्गल इन दोनोंमें जो बल हो वह मातृकारक होता है ॥ २ ॥

२-१-३ अप्राण्यपि पापदृष्टः । ३ ।

अर्थ—रवि और शुक इन दोनोंमें तथा चन्द्रमा और मङ्गल इन दोनोंमें जिसको पापग्रह देखते हों तौ वह बली भी कमसे पितृकारक और मातृकारक होते हैं ॥ ३ ॥

अब बली पितृकारकादिका फल कहते हैं—

प्राणिनि शुभदृष्टे तच्छ्रूले निधनं

२-२-४ मातापित्रोः । ४ ।

अर्थ—पितृकारक अथवा मातृकारक बलवान् हो औ उसके ऊपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तौ वह पितृकारक ए मातृकारक ग्रह जिस राशिमें स्थित हो, उस राशिसे त्रिकोण अर्थात् नवम और पञ्चम राशिकी दशाके विषे माता वा पिताका मरण होता है ॥ ४ ॥

२-३-५ तद्भावेशे स्पष्टवले । ५ ।

२-४-६ तच्छ्रूल इत्यन्ये । ६ ।

अर्थ—बलवान् अथवा निर्वल पितृकारक तथा मातृकारकसे जो अष्टमस्थान हो उसका स्वामी, बलवान् अथवा निर्वल पितृकारक और मातृकारकसे अधिक बली होय तौ जिस राशिसे विषे अष्टमस्थानका स्वामी स्थित हो उस राशिसे त्रिकोण कहिये नवम और पञ्चम राशिकी दशाके विषे पिता तथा माताका मरण होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

आयुपि चान्यत् । ७ ।

अर्थ—पिता आदिकी आयु विचारनेमें अन्य कारक तथा अन्य रीतिसे कहेहुए निष्कर्षण शूल दशा आदिका भी विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

अब पितृनिष्कर्षणके विषयमें कुछ विशेषता लिखते हैं—

अर्कज्ञयोगे तदाश्रये लग्नमेपदशायां

पितुरित्येके । ८ । २-१ - १

अर्थ—और कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि लग्नसे द्वादश राशिका स्वामी बुध या सूर्य हो, अर्थात् सिंह कन्या और मिथुन इन राशिओंमेंसे कोई एक राशि लग्नसे द्वादश-स्थानमें स्थित हो और उसके विषे सूर्य अथवा बुधका योग हो तब लग्नसे पञ्चम राशिकी दशाके विषे पिताका मरण होता है ॥ ८ ॥

अब बाल्यावस्थामेंभी माता पिताके मरणका योग कहते हैं कि—

व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग्द्वाद-

शाब्दात् । ९ ।

अर्थ—पितृकारक और मातृकारक चलवान् हों अथवा निर्बल हों और इनके विषे सूर्यका योग न हो, तथा अन्य पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो बारह १२ वर्षसे पहिले ही जन्मसे माता और पिताका मरण होता है ॥ ९ ॥

अब स्त्रीका निधनयोग कहने हैं कि—

गुरुशूले कलत्रस्य । १० ।

अर्थ—जिस राशिके विषे गुरुकी स्थिति हो उस रा-

शिसे त्रिकोण कहिये नवम और पञ्चम राशिकी दशाके विषे स्त्रीका मरण होता है ॥ १० ॥

अब पुत्रादिका निधनयोग कहते हैं—

०-२-३ तत्तच्छूले तेषाम् । ११ ।

अर्थ—पुत्र और मातुल (मामा) आदि कारककी राशिसे त्रिकोण कहिये नवम और पञ्चमराशिकी दशाके विषे पुत्रादिका मरण होता है ॥ ११ ॥

अब निधनमें शुभ और अशुभ भेद कहते हैं कि—

कर्मणि पापयुतदृष्टे दुष्टं मरणम् । १२ ।

अर्थ—लग्नसे वा कारकसे तृतीयस्थान पापग्रहसे युक्त हो अथवा पापग्रहसे देखागया होय तो अशुभ अर्थात् दुर्गतिपूर्वक मरण होता है ॥ १२ ॥

शुभं शुभदृष्टियुते । १३ ।

अर्थ—लग्नसे वा कारकसे तृतीयस्थान शुभग्रहसे युक्त हो अथवा शुभग्रहसे देखागया होय तो शुभ कहिये ज्वरादि करके श्रेष्ठगतिपूर्वक मरण होता है ॥ १३ ॥

०-२-३ मिश्रे मिश्रम् । १४ ।

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके ग्रहोंमें युक्त हो अथवा शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके ग्रहोंमें देखागया होय तो शुभा-शुभात्मक मरण होता है ॥ १४ ॥

अब मरणके निमित्त दिखाने हैं—

आदित्येन राजमृत्तात् । १५ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान सूर्यकरके युक्त हो अथवा सूर्यकरके देखा गया होय तो राजाके हेतुसे दुर्गतिपूर्वक अशुभ मरण होता है ॥ १५ ॥

चन्द्रेण यक्ष्मणः । १६ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान चन्द्रमाकरके युक्त हो अथवा चन्द्रमाकरके देखा गया होय तो राजयक्ष्मा अर्थात् क्षयी रोगसे मरण होता है ॥ १६ ॥

कुजेन व्रणशस्त्राग्निदाहाद्यैः । १७ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान मङ्गलकरके युक्त होय अथवा मङ्गल करके देखा गया होय तो व्रण (फोड़ा)-शस्त्र अग्निसे जलना इत्यादि दुर्गति कार्गोंके द्वारा मरण होता है ॥ १७ ॥

शनिना वातरोगात् । १८ ।

अर्थ—यदि लग्नमे वा आत्मकारकसे तृतीयस्थान शनिकरके युक्त हो अथवा शनिकरके देखा गया होय तो वात-रोगके द्वारा मरण होता है ॥ १८ ॥

मन्दमान्दिभ्यां विपसर्पजलाद्वन्ध-
नादिभिः । १९ ।

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान शनि और गुह्यकरके युक्त हो अथवा शनि और गुह्यकरके देखा गया होय तो विप (जहर)-सर्प-जल-और उद्वन्धन (फौसी) आदिके द्वारा अशुभ मरण होता है ॥ १९ ॥

* गुह्यकर स्पष्ट करनेकी शक्ति कर्कटक युक्त है ।

केतुना विपूची जलरोगाद्यैः । २० ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान केतुकरके युक्त हो अथवा केतुकरके देखागया होय तो विपूचिका (हैजा) और जलरोग (जलोदर) आदिके द्वारा मरण होता है ॥ २० ॥

चन्द्रमान्दिभ्यां पूगमदान्न कवलादिभिः
क्षणिकम् । २१ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान चन्द्रमा और गुठिककरके युक्त हो अथवा देखागया होय तो पूगफल (सुपारी) के मद (नशे) में, अथवा अन्नके घास आदिके द्वारा क्षणमात्रमें मरण होजाता है ॥ २१ ॥

गुरुणा शोफारुचिवमनाद्यैः ॥ २२ ॥

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान गुरु-स्पतिकरके युक्त हो अथवा गृहस्पतिकरके देखागया होय तो शोफ (रोगविशेष) अरुचि और वमन आदिके द्वारा मरण होता है ॥ २२ ॥

शुक्रेण मेहात् । २३ ।

लग्नसे या आत्मकारकसे तृतीयस्थान शुक्रकरके युक्त हो अथवा शुक्रकरके देखागया होय तो प्रमेह रोगसे मरण होता है ॥ २३ ॥

मिश्रे मिश्रात् । २४ ।

अर्थ—लग्नसे वा आत्मकारकसे तृतीयस्थान पूर्वोक्त

कई एक ग्रहोंकरके युक्त हो, अथवा देखागया होय तो अनेक रोगोंके द्वारा मरण होता है ॥ २४ ॥

चन्द्रदृग्योगान्निश्चयेन । २५ ।

अर्थ—लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान कई एक ग्रहोंकरके युक्त अथवा देखा हुआ होकर, चन्द्रमा करके युक्त अथवा देखा जाय तो अवश्यही अनेक रोगोंके द्वारा मरण होता है, इससे यह ध्वनित हुआ कि अन्य ग्रहोंकी दृष्टि अथवा योग होने परभी यदि चन्द्रमाका दृष्टि या योग नहीं होय तो मरणमें सन्देह होता है ॥ २५ ॥

अब दो सूत्रोंकरके मरणके देश विशेषका वर्णन करते हैं—

शुभैः शुभदेशे । २६ ।

अर्थ—यदि लग्नमे वा आत्मकारकसे तृतीयस्थान शुभ-ग्रहोंकरके युक्त हो अथवा देखागया होय तो शुभ देशके विषे मरण होता है ॥ २६ ॥

पापैः कीकटे । २७ ।

अर्थ—यदि लग्नमे वा आत्मकारकसे तृतीयस्थान पाप-ग्रहोंकरके युक्त हो अथवा देखागया होय तो मगध आदि पाप देशोंके विषे मरण होता है । (यदि शुभ और पाप दोनों प्रकारके ग्रहोंकरके युक्त हो अथवा देखागया होय तो, काशी आदि शुभ देशोंमें मरण होता है और न कीकट (मगध) आदि पाप देशोंमें मरण होता है, किन्तु पाप पुण्य प्रधान मध्यम श्रेणीके देशोंमें मरण होता है ॥ २७ ॥

ज्ञानपूर्वक मृत्यु होगी या अज्ञानपूर्वक होगी इसका निश्चय लिखते हैं—

गुरुशुक्राभ्यां ज्ञानपूर्वम् । २८ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान बृहस्पति अथवा शुक्र करके युक्त हो अथवा देखा गया हो तो ज्ञानपूर्वक मरण होता है ॥ २८ ॥

अन्यैरन्यथा । २९ ।

अर्थ—यदि लग्नसे अथवा आत्मकारकसे तृतीयस्थान उपरोक्त दो ग्रहोंको छोड़ अन्य ग्रहोंकरके युक्त हो या देखा जाय तो अज्ञानपूर्वक मरण होता है ॥ २९ ॥

लेपनजनकयोर्मध्ये शनिराहुकेतुभिः
पित्रोर्न संस्कर्त्ता । ३० ।

अर्थ—लग्न और द्वादशके मध्यमें शनि और राहुकी स्थिति हो अथवा शनि और केतुकी स्थिति होय तो माता पिताका संस्कार करनेवाला नहीं होता ॥ ३० ॥

लेपादि पूर्वार्द्धे जनकाद्यपरार्द्धे । ३१ ।

अर्थ—लग्नादि पूर्वार्द्धमें अर्थात् लग्न आदि प्रथम पदकर्म, और द्वादशाद्यपरार्द्ध कहिये द्वादश आदि उत्तर पदकर्म शनि राहु-केतुके होनेपर क्रमसे माता और पिताका संस्कार करनेवाला नहीं होता, अर्थात् लग्नादि पदकर्म शनि राहु अथवा शनि केतु हों तो माताका संस्कार करनेवाला नहीं होता है, और सप्तमादि पदकर्म शनि राहुक अथवा शनि केतुकी स्थिति होय तो पिताका संस्कार करनेवाला नहीं होता है, राहुकी और केतुकी एक स्थानमें स्थिति नहीं हो सकी, इस कारण तीनोंकी एकत्र स्थिति नहीं रही ॥ ३१ ॥

शुभदृग्योगान्न । ३२ । २-१

अर्थ—यदि लग्न द्वादशके मध्यमें शुभग्रहकी दृष्टि या योग होय तो पूर्वोक्त फल नहीं होता है अर्थात् माता पिताका संस्कार करनेवाला होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमुरादाबाद्वास्त्वपण्डितरामस्वरूपमणीतार्या
जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्याख्यायां द्वितीयाध्या-
यस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अर्थ—अब दशाभेद और बलभेद आदिका वर्णन करने हुए प्रथम नवांश दशाको कहते हैं कि—

विपमे तदादिर्नवांशः । १ । २-१

अर्थ—यदि जन्मलग्न विपमराशिके विपे होय तो लग्न आदि नवांशदशा होती है, अर्थात् लग्न आदि सम्पूर्ण राशिपोंकी नवांशदशा होती है, नौ नौ वर्षपर्यन्त एक एक राशिका भोग नवांशदशा होती है ॥ १ ॥

अन्यथाऽऽदर्शादिः । २ । २-२-२

अर्थ—अन्यथा अर्थात् सम राशिके विपे जन्मलग्न होय तो सप्तम राशिसे लेकर सम्पूर्ण राशिपोंकी नवांश दशा होती है, तहाँ शङ्का होती है कि—आदर्श नाम तो सम्मुखका है, यहाँ आदर्श पदसे सप्तमका ग्रहण क्यों किया ? तहाँ कहते हैं कि कुण्डलीके विपे सप्तमस्थानही सम्मुख होता है इस कारण आदर्शपदका अर्थ सप्तम किया है ॥ २ ॥

अब स्थिरदशाका वर्णन करते हैं—

शशिनन्दपावकाः क्रमादब्दाः

२-२-३ स्थिरदशायाम् । ३ ।

अर्थ—चर राशिकी स्थिर दशा सात ७ वर्षकी होती है, स्थिर राशिकी स्थिर दशा आठ ८ वर्षकी होती है, और द्विस्वभाव राशिकी स्थिर दशा नौ ९ वर्षकी होती है जैसे कि मेषकी सात ७ वर्षकी स्थिर दशा होती है, तथा वृषकी स्थिर दशा आठ ८ वर्षकी होती है, और मिथुन राशिकी स्थिर दशा नौ ९ वर्षकी होती है फिर कर्कराशिकी सात ७ वर्षकी इस क्रमसेही द्वादश राशि पर्यन्त, स्थिर दशाके वर्ष जानने चाहिये ॥ ३ ॥

अब स्थिरदशाका आरम्भस्थान कहते हैं—

२-२-४ ब्रह्मादिरेपा । ४ ।

अर्थ—पह स्थिरदशा उस राशिसे आरम्भ करनी चाहिये कि जिस राशिके विषे ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हों ॥ ४ ॥

२-२-५ अथ प्राणः । ५ ।

अब यहाँसे आगे वलनकरणका कथन करेंगे ॥ ५ ॥

कारकयोगः प्रथमो ज्ञानाम् । ६ ।

अर्थ—कारक योगराशिषोंका आदि वलन होता है ॥ ६ ॥

२-२-६ साम्ये भूयसा । ७ ।

अर्थ—ग्रह योग समान होने पर अर्थात् दो राशिषोंमें 'ह होय' तो जिस राशिके विषे थोड़े ग्रह स्थित हों उससे स्थिर ग्रहोंकरके पुनः राशि वली होना है ॥ ७ ॥

ततस्तद्वादि

अर्थ—यदि दोनों राशियोंके विषे समसंख्यावही ग्रह स्थित हों तौ जिस राशिके विषे उच्च आदि (उच्चस्थ स्व-गृहस्थ, मित्रगृहस्थ) ग्रह स्थित हों वह राशिही बलवान् होता है ॥ ८ ॥

अब राशियोंका स्वाभाविक बल कहते हैं—

निसर्गस्ततः । ९ ।

अर्थ—यदि पूर्वोक्त उच्चस्थत्व, स्वगृहस्थत्व, और मित्रगृहस्थत्व बलभी समान होय तौ निसर्गबल ग्रहण करना, अर्थात् चर राशिसे स्थिर राशिको बली जानना, और स्थिर राशिसे द्विस्वभावराशिको बली जानना, सोई वृद्धोंने कहा है—

अग्रहात्सग्रहोज्यायान्सग्रहेष्वधिकग्रहः ॥

साम्ये चरस्थिरद्वन्दाः क्रमात्सुर्वलशालिनः ॥

अर्थ—ग्रह हीन राशिसे ग्रहयुक्त राशि बली होता है, और ग्रहयुक्त राशियोंके विषे अधिक ग्रहों करके युक्त राशि बलवान् होता है, तथा ग्रहभी समानही होय तौ चर, स्थिर और द्विस्वभाव राशि क्रमसे बली होते हैं ॥ ९ ॥

तदभावे स्वामिन इत्यम्भावः । १० ।

अर्थ—जो राशि पूर्वोक्त बल करके रहित हो वह अपने स्वामीके पूर्वोक्त बलकरकेभी बलवान् हो जाता है ॥ १० ॥

आग्रायतोऽत्र विशेषात् । ११ ।

अर्थ—एक राशिके विषेही बहुतसे ग्रह स्थित हों और उनका राशिद्वारक बल समान हो तौभी इस ग्रन्थके विषे आग्रायत (अधिक अंशवाला) ग्रह बलवान् होता है ॥ ११ ॥

प्रातिवेशिकः पुरुषे । १२ ।

अर्थ—पुरुष कहिये ओज (विषम) राशिका प्रातिवेशिक कहिये पासकी राशिके विषे वर्त्तमान अर्थात् द्वितीय और द्वादशस्थानमें स्थित ग्रहभी अपनी राशिको बली करनेवाला होता है ॥ १२ ॥

इति प्रथमः । १३ ।

अर्थ—इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे प्रथमबल वर्णन किया ।

स्वामिगुरुज्ञह्योगो द्वितीयः । १४ ।

अर्थ—स्वामि योग, गुरु योग, बुध योग, और स्वामि-दृष्टि, गुरुदृष्टि, तथा बुधदृष्टि यह द्वादश राशियोंमें प्रत्येक राशिका बल होता है. यह छः प्रकारका बल द्वितीयबल कहाता है ॥ १४ ॥

स्वामिनस्तृतीयः । १५ ।

अर्थ—स्वामी कहिये राशिके अधिपतिका वक्ष्यमाण तीन प्रकारका बल होता है ॥ १५ ॥

अब राशियोंके स्वामीका बल—अबल दिसाते हैं—

स्वात्स्वामिनः कण्टकादिष्वपारदौ-

र्वत्यम् । १६ ।

अर्थ—आत्मकारकसे कण्टक आदिके विषे तिस तिस स्थानके स्वामी ग्रहको अपार दुर्बलता होनी है, अर्थात् आत्मकारकसे केन्द्र (१-७-१०-१२) स्थानके विषे और

आत्मकारकसे आपोक्लिम (३-६-९-१२) स्थानके विषे तिस स्थानके स्वामी ग्रह अपार दुर्बल होता है, यहाँ 'अ-पार' पदका अर्थ यह है कि आत्मकारकसे केन्द्रस्थानमें स्थित ग्रह पूर्णबली होता है, और 'पणफर' स्थानमें स्थित ग्रह अर्द्धबली होता है, तथा 'आपोक्लिम' स्थानमें स्थित ग्रह शून्यबली होता है, ऐसा अर्थ इस कारण किया कि 'अपार' पदमें अ-पा-र यह तीन अक्षर हैं यहाँ अकारका अर्थ शून्य है, पाकारका अर्थ एक है, और रकारका अर्थ दो है, इस सबका दौर्बल्यके साथ अन्वय करके शून्यबली, अर्द्धबली पूर्णबली ऐसा अर्थ होता है ॥ १६ ॥

चतुर्थतः पुरुषे । १७ ।

अर्थ—“पापदृग्भोग”-इत्यादि सूत्रसे जो आगे चतुर्थबलका वर्णन करेंगे तिस चतुर्थबलसेभी पुरुष कहिये विषम राशिके विषे बल होता है ॥ १७ ॥

अब निर्याणशूलदशा लिखते हैं—

पितृलाभप्रथमप्राण्यादिशूलदशा-

निर्याणे । १८ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो उपरोक्त बलकी रीतिसे बलवान् हो, उससे लेकर नौ २ वर्ष प्रत्येक राशिकी दशाका भोग होता है, जब पूर्वोक्त अधिक बलवाले राशिमें कण्टक (त्रिकोण १-५-९) राशिकी दशा आती है तबहीं मरण होता है ॥ १८ ॥

अब पिताकी निर्याणदशा कहते हैं—

पितृलाभपुत्रप्राण्यादिः पितुः । १९ ।

अर्थ—लग्नसे जो नवमराशि और सप्तमस्थानसे जो नवमराशि इन दोनोंमें जो राशि बलवान् हो उससे प्रारम्भ करके गणना करनेसे नौ २ वर्षकी प्रत्येक राशिकी दशा होती है, जब पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (त्रिकोण १-५-९) की दशा आवै तब पिताका मरण होता है॥१९॥-

अब माताकी निर्घर्णदशा कहते हैं—

आदर्शादिमातुः । २० ।

अर्थ—लग्नसे जो चतुर्थराशि हो और सप्तमस्थानसे जो चतुर्थराशि हो इन दोनों राशिषोंमें जो बलवान् राशि हो उससे लेकर नौ २ वर्षकी प्रत्येक राशिकी दशा होती है, जब पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (त्रिकोण १-५-९) की दशा आवै तब माताका मरण होता है ॥ २० ॥

अब भ्राताकी निर्घर्णदशा कहते हैं—

कर्मादिभ्रातुः । २१ ।

अर्थ—लग्नसे जो तृतीय हो, और सप्तमस्थानसे जो तृतीय हो इन दोनोंमें जो राशि बलवान् हो उस राशिसे लेकर प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, पूर्वोक्त बलवान् राशिसे जो कण्टक (१-५-९) राशि हो उसकी दशा हो ती भ्राताका मरण होता है ॥ २१ ॥

मात्रादिभगिनीपुत्रयोः । २२ ।

अर्थ—लग्नसे जो पथम हो और सप्तमस्थानसे जो पथम हो, इन दोनोंमेंसे बलवान् राशिसे लेकर प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, जब उम्मी पूर्वोक्त

बलवान् राशिसे कण्टक (१-५-९) राशिकी दशा आवै तब भगिनी (वहिन) और पुत्रका मरण होता है ॥ २२ ॥

व्ययादिज्येष्ठस्य । २३ ।

अर्थ—लग्नसे जो एकादश और सप्तमस्थानसे जो एकादश, इन दोनोंमें जो राशि बलवान् हो उससे लेकर मत्पेक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है जब उसी पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (१-५-९) राशिकी दशा आवै तब ज्येष्ठ भ्राताका मरण होता है ॥ २३ ॥

पितृवत्पितृवर्गे । २४ ।

अर्थ—लग्नसे जो नवमराशि और सप्तमस्थानसे जो नवमराशि, इन दोनोंमें जो बलवान् हो उससे लेकर मत्पेक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, जब उसी पूर्वोक्त बलवान् राशिसे कण्टक (१-५-९) राशिकी दशा आवै तब जिस प्रकार पिताका मरण होता है, तिसीप्रकार पितृव्य (चचा) आदिकाभी मरण होता है ॥ २४ ॥

अब ब्रह्मदशा लिखते हैं—

ब्रह्मादिपुरुषे समा दासान्ताः । २५ ।

अर्थ—पुरुष कहिये विषमराशिके विषे जन्मलग्न होय तब जिस राशिके विषे ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हों उस राशिसे लेकर सम्पूर्ण राशियोंकी ब्रह्मदशा होती है, इस ब्रह्मदशाके विषे मत्पेक राशिके अपने स्थानसे षष्ठस्थानके स्वामीपर्यन्त वर्ष होते हैं, जैसे कि—यदि मेषराशिकी दशाके वर्ष जानने हों तब मेषराशिसे षष्ठ राशि हुआ कन्याराशि तिस कन्याराशिकी स्वामी बुध कुम्भराशिमें स्थित हो तब

मेपराशिसे कुम्भराशि ग्यारहवीं होती है इस कारण मेपरा-
शिकी दशाके वर्षभी ग्यारहही होते हैं ॥ २५ ॥

२-३-६ स्थानव्यतिकरः । २६ ।

अर्थ—इस ब्रह्मदशाके विषे स्थानका व्यतिकरभी है,
अर्थात् सप्तमराशिका सम्बन्ध है, इसका तात्पर्य यह हुआ
कि यदि सप्तमराशिके विषे जन्मलग्न होय तो जिस स्थानमें
ब्रह्मसंज्ञक ग्रह स्थित हों उस स्थानसे सप्तम राशिकी ती
प्रथमदशा होती है, तदनन्तर व्युत्क्रमकी रीतिसे अन्यरा-
शिपोंकी दशा होती है यहाँ भी राशिके वर्ष जाननेकी
रीति पूर्वोक्तही है ॥ २६ ॥

अब चतुर्थवत्त दिखाने हैं—

पापदृग्योगास्तुङ्गादिग्रहयोगः । २७ ।

अर्थ—पापग्रहोंकी दृष्टि और योग राशिका बल हो-
ताहै, तथा अपने उद्यमूल त्रिकोण, स्वर्क्ष अधिमित्र, और
मित्रराशिके विषे स्थित शुभग्रहका योगभी राशिका बल
होता है,। तीन पूर्वोक्त और एक यह चारों बल समाप्त हुये २७

अब पूर्वोक्त चरदशाके विषे किस राशिकी दशाके अनन्तर
किस राशिकी दशा होनी चाहिये. यह कहते हैं—

पञ्चमे पदक्रमात्प्राक्प्रत्यक्त्वम् । २८ ।

अर्थ—तीन तीन राशिपोंका एक एक पद होता है,
इस प्रकार चार पद होते हैं, उग्रसे नवमस्थानके विषे पदके
क्रमकरके और प्रत्यक्त्व होताहै, अर्थात् उग्रसे नवमस्थानके
विषे यदि ओज चाहिये विपमपदमेका कोई राशि स्थित होय
तो उग्रके क्रमसे राशिपोंकी दशा होनी है, और समपदमेंका

कोई राशि पूर्वोक्तस्थानमें स्थित होय तौ लग्नके व्युत्क्रमसे दशा होती है ॥ २८ ॥

चरदशायामत्र शुभः केतुः । २९ ।

अर्थ—इस चरदशाके विषे केतु शुभ होता है अर्थात् शुभग्रह होकर फल देता है ॥ २९ ॥

इति श्रीपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादावाद्वास्तव्यपण्डितरा-

मस्वरूपप्रणीतायां जैमिनीयजातकशास्त्रभाषाव्या-

ख्यायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः

समाप्तः । ३ ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पापः ॥

द्वितीयं भावबलं चरनवांशे । १ ।

अर्थ—चरराशिकी नवांश दशाके विषे फलादेश कहनेके अर्थ “स्वामिगुरुशेदृग्योग”—इत्यादि सूत्रके अनुसार द्वितीय भावबलका ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥

अब द्वारवाह्यराशियोंको दिखाते हैं—

दशाश्रयो द्वारम् । २ ।

अर्थ—जिस राशिकी जिस समय चर, स्थिर, द्विःस्व-भाव, इन दशाश्रयोंमेंसे जो दशा हो, उस दशावाले राशि कोही ‘द्वार’ कहते हैं, और इस राशिकाही ‘पाकर’ नामसेभी व्यवहार करते हैं ॥ २ ॥

अर्थ—लग्नसे जितनी संख्या अगले स्थान पर द्वारराशि स्थित हो, द्वार राशिसे उतनी संख्या अगले स्थानमें स्थित राशिको 'बाह्य'राशि कहते हैं, और बाह्यराशिकोही भोग-राशि नामसे व्यवहार करते हैं, यहाँ लग्नशब्दसे प्रसिद्धलग्नका ग्रहण नहीं होता है, किन्तु जन्मकालमें प्रथमही प्रयम जिस राशिकी दशाका आरम्भ हो वह राशिही लग्नपदसे ग्रहण होता है, वह प्रसिद्ध लग्न हो, चाहे सप्तम हो चाहे ब्रह्मसंज्ञक ग्रहाश्रित राशि हो ॥ ३ ॥

अब द्वार बाह्यराशियोंका फल कहते हैं—

तयोः पापे बन्धयोगादिः । ४ ।

अर्थ—जिन द्वार और बाह्यराशिके विषे पापग्रह स्थित होय तौ तिन द्वार और बाह्य राशिकी दशाके विषे बन्ध आदि योग होता है, सो बुद्धकारिकामें कहा है—

“पाके भोगे च पापाद्ये देहपीडा मनोव्यथा”

अर्थ—पाकराशि कहिये द्वारराशिके विषे और भोग राशि कहिये बाह्यराशिके विषे पापग्रह हों तौ देहमें पीडा और मनमें व्यथा होती है ॥ ४ ॥

स्वर्दोऽस्य तस्मिन्नोपजीवस्य । ५ ।

अर्थ—पदि द्वार और बाह्यराशिमें विषे स्थित पापग्रह गृहस्पतिके समीपमें स्थित हों अर्थात् गृहस्पतिकरके युक्त हों तौ पूर्वोक्त फल नहीं होता है ॥ ५ ॥

भग्नहयोगोक्तं सर्वमस्मिन् । ६ ।

अर्थ—राशि और ग्रहोंकरके होनेवाले योगोंके विषे

जो फल कहे हैं वह सम्पूर्ण फलद्वार और बाह्यराशिपोंके विषेभी जानने ॥ ६ ॥

अब केन्द्रदशाके आरम्भमें स्थानभेद दिखाने हैं—

पितृलाभप्राणितोयम् । ७ ।

अर्थ—लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो बलवान् हो उस राशिसे लेकर इस केन्द्रदशाका आरम्भ होता है । इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहा है—

“वलिनः शुक्रशशिनोः केन्द्राख्यान्तु दशां नयेत् ।

पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्वर्णतो नयेत् ॥ ”

अर्थ—यदि पुरुषके फलादेशका विचार करना होय तो शुक्र कहिये लग्न और शशि कहिये सप्तम जो बलवान् हो उस राशिसे केन्द्रदशाका आरम्भ होता है, और यदि स्त्रीके फलादेशका विचार करना होय तो सप्तमसेही केन्द्रदशा लगनी है ॥ ७ ॥

अब केन्द्रदशाके क्रममें भेदोंको कहते हैं—

प्रथमे प्राक्प्रत्यक्त्वम् । ८ ।

अर्थ—यदि चरराशि लग्न अथवा सप्तममें स्थित होय तो लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो बलवान् हो उससे आरम्भ करके प्रथमे केन्द्रदशा लगनी है, और तहाँभी यदि विषमपद होय तो प्रथम द्वितीय इत्यादि क्रममें और समपद होय तो द्वादश पञ्चादश इत्यादि व्युत्क्रमरीतिमें केन्द्रदशा लगनी है ॥ ८ ॥

द्वितीये रवितः । ९ ।

अर्थ—यदि लग्न अथवा मध्यमस्थानमें द्वितीय कहिये

स्थिर राशि स्थित होय तौ लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो बलवान् हो उस बलवान् राशिसे पञ्चस्थानमें जो राशि हो उस राशिसे केन्द्रदशाका प्रारम्भ होता है, यहाँ यदि विषमपद होय तौ क्रमसे और समपद होय तौ व्युत्क्रमसे दशा लगती है ॥ ९ ॥

पृथक्क्रमेण तृतीये चतुष्टयादि। १० ।

अर्थ—लग्न अथवा सप्तमस्थानके विषे तृतीय कहिये द्विःस्वभावराशि स्थित होय तौ लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो बलवान् हो उस राशिसे चतुष्टय आदि अर्थात् प्रथम केन्द्रकी तदनन्तर पणफरकी और तदनन्तर आपोक्लिमकी दशा लगती है, यदि विषमपद होय तौ क्रमसे और समपद होय तौ व्युत्क्रमसे दशा लगती है। इस दशामें भी प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है ॥ १० ॥

अब कारक केन्द्रादि दशाओंको कहते हैं—

स्वकेन्द्रस्थाद्याः स्वामिनो नवां-

शानाम् । ११ ।

अर्थ—आत्मकारकसे केन्द्रस्थानमें, आत्मकारकसे पणफरस्थानमें तथा आत्मकारकसे आपोक्लिमस्थानमें स्थित राशिमें क्रमसे नवांशदशाके वर्षोंकी स्वामी होती हैं, वहाँभी जो राशि सबसे अधिक बलवान् हो वह प्रथम, उससे कम बलवान् हो सो उसके अनन्तर इस क्रमसे जानना, मोई वृद्धकरिकाओंमें कहा है—

“प्रतिभं नव वर्षाणि कारकाश्रयराशितः ।

जन्म सम्पद्विपक्षेः प्रत्यरिः साधको वधः ॥

मैत्रं परममैत्रञ्चेत्येवमन्तर्दशां नयेत्” ।

अर्थ—जिस राशिके विषे कारकसंज्ञक ग्रह स्थित होय, उस राशिसे प्रारम्भ करके प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, उन वर्षोंमें प्रथम वर्ष जन्म, द्वितीय सम्पत्, तृतीय विपत्, और चतुर्थ क्षेम, पञ्चम मृत्युरि, षष्ठ साधक, सप्तम बध, अष्टम मैत्र, और नवम परममैत्र नाम-वाला होता है, और इन नामोंके अनुसारही कल होते हैं, इसीप्रकार अन्तर्दशाभी जानै ॥ ११ ॥

अब अन्य केन्द्रदशा कहतेहैं—

पितृचतुष्टयवैपम्यबलाश्रयः
स्थितः ॥ १२ ॥

अर्थ—लग्न आदि चारों (१-४-७-१०) केन्द्रस्थानोंमें स्थित जो राशि तिन राशिषोंमें जो राशि अधिक बलवान् हो उसकी प्रथमदशा होती है, यहाँभी प्रत्येकराशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है, केन्द्र, पणकर, आपोक्षिम, इन स्थानोंमें स्थित राशिषोंमेंसे जो सबसे अधिक बली हो उसकी प्रथम, और जो उससे कम बली हो उसकी तदनन्तर इस क्रमसे जानना ॥ १२ ॥

अब आत्मकारक आदि ग्रहोंकी दशाके वर्ष लानेकी रीति लिखते हैं—

स तद्भाभयोरावर्त्तते ॥ १३ ॥

अर्थ—यह कारकग्रह लग्न और सप्तमस्थानके विषेही आपृति किया जाता है. तात्पर्य यह है कि लग्नसे क्रमकी रीतिसे कारक ग्रहपर्यन्त गणना करनेसे और सप्तमसे व्युत्क्रम (उलटी ओर) से कारक ग्रहपर्यन्त गणना कर-

नेसे जिस ओरकी राशिसंख्या अधिक होय उस ओरकी राशिसंख्याके समान कारकग्रहकी दशाके वर्ष होते हैं, और जो ग्रह कारकग्रहकरके युक्त हों उनकी दशाके वर्षभी कारककी दशाके वर्षोंकी तुल्यही होते हैं. अन्य ग्रहोंकी दशाके वर्ष लानेकी रीति यह है कि—जिस स्थानमें अन्य ग्रह स्थित हो उस स्थानसे कारकग्रहपर्यन्त जितनी राशि-संख्या होय, उतने वर्षही उस ग्रहकी दशाके होते हैं, किन्तु गणना यहाँ विषम समपदके अनुसार होती है, आशय यह है कि, जो ग्रह विषमपदकी राशिके विषे स्थित होय उस राशिके स्थानसे क्रमसे (सीधी) गणना और जो ग्रह समपदकी राशिके विषे स्थित होय उस राशिके स्थानसे व्युत्क्रमसे (उलटी) गणना होती है ॥ १३ ॥

अब फल कहते हैं—

स्वामिवलफलानि च प्राग्वत् । १४ ।

अर्थ—दशाओंके स्वामी जो राशि और ग्रह उनके बल और फल पूर्वोक्त रीतिके अनुसारही जानना ॥ १४ ॥

अब मण्डूकदशा कहते हैं—

स्थूलादर्शविषम्याश्रयो मण्डूक-

खिकूटः । १५ ।

अर्थ—धर-स्थिर-द्विस्वभाव. इन तीनोंमें होनेके कारण अथवा केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम, इन तीनोंमें होनेके कारण मण्डूकदशा खिकूट नामवाली कहानी है, यह मण्डूकदशा स्थूलादर्श विषम्याश्रय कहिये स्थूल जो लग्न और आदर्श जो ममम इन दोनोंमें जो पदवान् दो उभयमेकारमा होती है. तहो बूझने विमेष कहा है कि—

“वलिनः शुक्रशशिनोर्ज्ञेया मण्डूकदा दशा ।

पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्वर्षणतो नयेत् ॥”

अर्थ—इसी अध्यायके चतुर्थपादके सप्तमसूत्रमें कहे चुके हैं ॥ १५ ॥

अब शूलदशाका फल कहने हैं—

निर्ध्याणलाभादि शूलदशाफले । १६ ।

अर्थ—मारक राशिसे जो सप्तमराशि हो उससे प्रारम्भ करके शूलदशा लगती है ‘शूलदशा’ यह नाममात्रका निर्देश है, रुद्रशूल, रुद्राश्रय, महेश्वरर्क्ष और मारकर्क्ष इत्यादि मारकोंकी अधिकतासे यह शूलदशा अनेक प्रकारकी होती है, और प्रत्येक राशिकी दशाके नौ २ वर्ष होते हैं ॥ १६ ॥

अब विशेष विधियोंको त्याग कर सम्पूर्ण दशाओंके एकरातिसे दशारम्भमें वर्ष लानेकी विशेषरीति कहते हैं—

पुरुषे समाः सामान्यतः । १७ ।

अर्थ—सम्पूर्ण दशाओंके विषे यदि आरम्भराशि विषम होय तो सामान्यतः कहिये उस राशिसेही दशा लगती है, और वर्षभी प्रत्येक दशाके नौ २ होते हैं, और यदि आरम्भराशि सम होय तो आरम्भराशि से जो सप्तम राशि उससे लेकर प्रत्येक दशा नौ २ वर्षकी होती है । और विषमसप्तपदके अनुसार क्रमवृत्तक्रमगणना होती है ॥ १७ ॥

अब नक्षत्रदशा कहते हैं—

सिद्धा ऊडुदाये । १८ ।

अर्थ—नक्षत्रापूर्वापके विषे अर्थात् विंशोत्तरी अष्टोत्तरी

आदि दशाओंके विषे वर्षसंख्या अन्य बृहत्पाराशरीआदि जातग्रन्थोंके अनुसार ग्रहण करना चाहिये ॥ १८ ॥

अब योगार्द्धदशा कहते हैं—

जगत्तस्थुपोरर्द्ध योगार्द्धे । १९ ।

अर्थ—योगार्द्धदशाके विषे पूर्वोक्त जगत् कहिये चर-दशा और तस्थिवान् कहिये स्थिरदशा इन दोनों दशाओंके वर्षोंको जोड़कर आधा करनेसे जो संख्या हो वही योगार्द्धदशाके वर्ष होते हैं ॥ १९ ॥

अब योगार्द्धदशाके आरम्भकी राशि कहते हैं—

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयन्तत् । २० ।

अर्थ—लग्न चलवान् होय तौ लग्नसे योगार्द्धदशा लगती है, और सप्तम चलवान् होय तौ सप्तमसे योगार्द्धदशाका आरम्भ होता है, और विषमपद होय तौ क्रमसे तथा समपद होय तौ व्युत्क्रमसे दशा लगती है, स्त्रीकी दशा चलवान् सप्तमसे लगती है, और पुरुषकी दशा लग्न और सप्तममें जो चलवान् हो उससे लगती है ॥ २० ॥

अब द्वादश कहते हैं—

कुजादिस्त्रिकूटपदक्रमेण द्वादशा । २१ ।

अर्थ—लग्नसे जो नवमराशि उससे आरम्भकरके त्रिकूटपदके क्रमसे द्वादशा होती है, अर्थात् लग्नसे नवमस्थानां जो राशि स्थित हो प्रथम उस राशिकी दशा होनी है, तद्नन्तर वह राशि जिस राशिको देखनी हो उमराशिकी दशा होती है, तदनन्तर लग्नसे दशमराशिकी दशा होनी है, तदनन्तर वह लग्नमें; दशमराशि जिस राशिको देखनी हो

उस राशिकी दशा होती है, और तदनन्तर लग्नसे जो ग्यारहवाँ राशि हो उसकी दशा होती है, तदनन्तर उस लग्नसे ग्यारहवें राशिकी जिस राशिके ऊपर दृष्टि हो उस राशिकी दशा होती है इस दशाकाही दृग्दशा नाम है, इस दृग्दशा-के विषयी प्रत्येक राशिकी नौ २ वर्षकी दशा होती है ॥ २१ ॥

अब विषम समपदके भेदसे गणनाका क्रम कहते हैं—

मातृधर्मयोः सामान्यं

विपरीतमोजकूटयोः । २२ ।

यथासामान्यं युग्मे । २३ ।

अर्थ—चरराशिसे पञ्चम और एकादशस्थानकी गणना क्रमसे सीधी होती है और स्थिरराशिसे पञ्चम तथा एकादशस्थानकी गणना व्युत्क्रमसे (उलटी) होती है, और दिग्भ्रातराशिसे ती क्रम और व्युत्क्रम दोनोंसे होती है, परन्तु यहाँ पञ्चम और एकादशका सम्बन्ध नहीं है; इसकारण यहाँ दृष्टिका क्रम ग्रहण करते हैं, आशय यह है कि लग्नसे पूर्वोक्त नवमादि स्थानोंमें यदि चर राशि स्थित हो तो उस राशिसे क्रमसे गणना करके अष्टम, पञ्चम, और एकादशस्थान दृग्दशाका होता है, और यदि लग्नसे पूर्वोक्त नवमादिस्थानोंके विषे स्थिर राशि स्थित होय तो उस राशिसे व्युत्क्रमरीतिसे गणना करके षष्ठ, पञ्चम, और एकादशस्थान दृग्दशाके योग्य होता है, और यदि लग्नसे पूर्वोक्त नवमादिस्थानोंके विषे दिग्भ्रातराशि स्थित होय तो उसमें इतना विशेष होता है कि यदि विषम दिग्भ्रातराशि स्थित होय तो उस राशिसे क्रमरीतिसे गणना करके षष्ठ, पञ्चम, और एकादशस्थान दृग्दशाके योग्य होता है

और यदि सम दिग्भूतभाव राशि स्थित होय तौ उस राशिसे व्युत्क्रमरीतिकी गणना करके सप्तम, चतुर्थ, और दशम-स्थान द्वादशाके योग्य होता है, यहाँभी प्रत्येक राशिकी दशाके नौ २ वर्ष होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

अब त्रिकोणदशाका स्वरूप दिखाने हैं—

पितृमातृधर्मप्राण्यादिस्त्रिकोणे । २४ ।

अर्थ—लग्न और पञ्चम तथा नवम इन तीनोंमें जो प्राणी कहिये चलवान् हो उससे प्रारम्भकरके त्रिकोणदशा लगती है, परन्तु विशेष यह है कि यदि स्त्रीका जन्म होय तौ व्युत्क्रमरीतिसे और पुरुषका जन्म होय तौ क्रमसे, अपने स्थानसे लेकर जिस स्थानमें अपना स्वामी स्थित हो उस स्थानपर्यन्त गणना करनेसे जो संख्या हो, उतने वर्ष प्रत्येक राशिकी दशाके होते हैं यही वृद्धिकारिकामें लिखा है ॥ २४ ॥

अब पाकभोगराशियोंको दिखानेहुए त्रिकोणदशाका फल कहते हैं—

तत्र वात्याभ्यां तद्वत् । २५ ।

अर्थ—द्वार और वाह्यराशियोंके विषे जिसप्रकार फल कहा है, विसमप्रकार इस त्रिकोणदशाके विषेभी जानना सोई वृद्धिकारिकामें कहा है—

“तदिदं चरपर्यायस्थिरपर्याययोर्द्वयोः ।

त्रिकोणाख्यदशायाञ्च पाकभोगप्रकल्पने ॥

पाके भोगे च पापादये देहपीडा मनोव्यथा”

अर्थ—चरदेशके विषे, और दशाके विषे तथा त्रि-

कोणनामक दशाके विषेभी पाक (दार) भोग (बाह्य) राशिपोंके फलके अनुसार फल होता है, वह फल यह है कि यदि पाकभोगराशि पापग्रहोंकरके पुक्त होय तौ देहमें पीड़ा और मनमें व्यथा होती है, और यदि शुभग्रहोंकरके पुक्त होय तौ शुभफल होता है, तिसीप्रकार चरदशा स्थिरदशा और त्रिकोणदशाके विषेभी जानना ॥ २५ ॥

अब तिन तिन कारकोंसे तिन तिन स्थानोंका फल कहते हैं—

धासगैरिकात्पत्नीकरात्कारकैः फलदेशः २६

अर्थ—सप्तम, तृतीय, मथम, और नवम. इन कारकोंसे फलका विचार करै, इसका तात्पर्य यह है कि सप्तमस्थानसे स्त्रीका विचार करै, तृतीय स्थानसे लघुप्राप्ताका विचार करै, मथमकारकसे अपना विचार करै, और नवमकारकसे पिताका तथा धर्मका विचार करै ॥ २६ ॥

अब नक्षत्रदशा कहते हैं—

ताराकांशे मन्दाद्यो दशेशः । २७ ।

अर्थ—जन्मदिनके विषे जो चन्द्रमाका नक्षत्र हो, उस नक्षत्रकी सर्वक्षरीति करके जो घटिका (दण्ड) हों उनको बारह स्थानमें विभाग करके प्रथमभागसे लेकर बारहो भाग क्रममे बारहो राशिपोंके होते हैं, इस रीतिसे जन्मकाठमें जिस राशिका भाग होय उम राशिसे मारम्भ करके नक्षत्रदशा लगतीहै, यहाँभी पुरुष और स्त्रीके भेदसे क्रम और व्युत्क्रमरीतिकरके गणना होती है. यहाँ प्रत्येक राशिकी दशाके नौ २ वर्ष ग्रहण करने चाहिये ॥ २७ ॥

अब तीनसूत्रोंकरके नक्षत्रदशाका फल कहते हैं—

तस्मिन्नुच्चे नीचे वा श्रीमन्तः । २८ ।

अर्थ—वह तारालग्नेश यदि अपने उच्च अथवा नीच स्थानमें स्थित होय तौ वह पुरुष लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ २८ ॥

स्वमित्रभे किञ्चित् । २९ ।

अर्थ—और वह तारालग्नेश यदि अपने स्थानमें अथवा मित्रके स्थानमें स्थित होय तौ मित्रिन्मात्र लक्ष्मी होती है ॥ २९ ॥

दुर्गतोऽपरथा । ३० ।

अर्थ—और यदि वह तारालग्नेश शत्रुस्थानमें स्थित होय तौ पुरुष दुर्गत कहिये दरिद्र होता है ॥ ३० ॥

यथासंक्रमव्युत्क्रमौ । ३१ ।

स्ववैषम्ये साम्ये विपरीतम् । ३२ ।

अर्थ—यदि आत्मकारक वैषम्य कहिये विषमपद होय अर्थात् विषमपदके विषे स्थित होय तौ राशिके स्वभावके अनुसार क्रम और व्युत्क्रम जानने. अर्थात् यदि विषमपदके विषे विषम राशि होय तौ क्रमकरके और यदि विषमपदमें समराशि होय तौ व्युत्क्रमकरके अन्तर्दशा लगती है. समपदमें इससे विपरीत होता है. अर्थात् समपदमें समराशि होय तौ क्रमसे और समपदमें विषम राशि होय तौ व्युत्क्रमसे अन्तर्दशा लगती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शनौ चेत्येके । ३३ ।

अर्थ—और जिसमकार आत्मकारकसे अन्तर्दशाका

क्रम और व्युत्क्रम होता है. विसीमकार शनैश्वरसेभी क्रम और व्युत्क्रम आदि जानना. ऐसा किन्ही आचार्योंका मत है ३३

अन्तर्भुक्त्यंशयोरेतत् । ३४ ।

अर्थ—इकतीसवें सूत्रमें स्वपद ग्रहण करा है, इस-
कारण कारकान्तर्दशा और कारकोपदशा आदिके विषयी
पही रीति जानना ॥ ३४ ॥

अथ दशाका फल विशेष कहते हैं—

शुभदशा शुभयुते धाम्न्युच्चे वा । ३५ ।

अर्थ—जो राशि शुभग्रहकरके युक्त होय ती उस राशिकी
दशा शुभ होती है, और जिसराशिके विषे अपने उच्चस्था-
नमें स्थित ग्रह स्थित हों तथा जिस राशिका स्वामी अपने
स्थानमें स्थित हो उस राशिकीभी दशा शुभ होती है ३५॥

अन्यथाऽन्यथा । ३६ ।

अर्थ—और जिस राशिका उच्चग्रह आदिसे सम्बन्ध नहीं-
होय उस राशिकी दशा सम होती है अर्थात् न शुभ होती है,
और न अशुभ होती है, और जिस राशिका पाप नीचस्थ आदि
ग्रहोंसे सम्बन्ध होय उसराशिकी दशा अशुभ होती है ॥ ३६ ॥

सिद्धमन्यत् । ३७ ।

अर्थ—और जो वक्तव्य विषय इस ग्रन्थमें नहीं कहा
है, वह अन्य ज्ञातवशास्त्रके ग्रन्थोंसे सिद्ध होता है ॥ ३७ ॥

इति श्रीपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादावादवास्तव्यपण्डि-

तरामस्वरूपभूषीतिपां. वैष्णवीप्यारम्भ-

शान्त्रभाषाटीकायां द्वितीयाध्याय-

स्य चतुर्थः पादः समाप्तः । ४॥

श्रीः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ राजजनिताभ्यां योगे योगे लेयान्मेधाधिपः
॥ १ ॥ उच्चनीचस्वांशवती तादृशदृष्टिश्च शुभमावृष्टे
यदि महाराजः ॥ २ ॥ लेयलाभयोः परकाले ॥ ३ ॥
लाभलेयाभ्यां स्थानंगः ॥ ४ ॥ तत्र शुक्रचन्द्रयोर्मान-
वन्तः ॥ ५ ॥ तत्र शनिकेतुभ्यां गजतुरगाधीशः ॥ ६ ॥
शुक्रकुजकेतुषु स्वभाग्यदारेषु स्थितेषु राजानः ॥ ७ ॥
पितृलाभधनप्राणयोश्च ॥ ८ ॥ पत्नीलाभयोः समा-
नकालः ॥ ९ ॥ भाग्यदारयोर्ग्रहयुक्तसमानेषु सांप्रतः
॥ १० ॥ तत्र उच्चे करसंख्या राज्ञां च ॥ ११ ॥ पितृ-
धर्मयोर्लेयलाभयोर्गुरौ चंद्रशुभदृग्योगे मण्डलान्तः
॥ १२ ॥ तत्र बुधगुरुदृग्योगे युवजो वा ॥ १३ ॥ त-
स्मिन्नुच्चे नीचे पितृलाभयोः श्रीमन्तः ॥ १४ ॥ स्व-
भावनाथाभ्यां शुक्रचन्द्रदृग्योगयोः ॥ १५ ॥ तत्र शुभ-
वर्गेषु श्रीमन्तः ॥ १६ ॥ दारशूलयोश्चन्द्रगुरौ ॥ १७ ॥
शूले चन्द्रे रिःफगुरौ धनेषु शुभेषु राजानः ॥ १८ ॥
पत्नीलाभयोश्च ॥ १९ ॥ एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥ २० ॥
लेयलाभश्चन्द्रेगुरौ शुभदृग्योगे महान्तः ॥ २१ ॥ लाभ-
श्चन्द्रेऽपि ॥ २२ ॥ पापयोगाभावे शुभदृग्योगिनि च

॥ २३ ॥ अत्र शुभदृग्योगे राजप्रेष्यः ॥ २४ ॥ शुभ-
 वर्जेषु त्रिकोणैकदेवा ॥ २५ ॥ स्वांशयोगे राजवंशः
 ॥ २६ ॥ उच्चांशे तादृशदृष्टिश्च राजा (राज वंश्यो) वा
 ॥ २७ ॥ अशुभदृग्योगान्न चेन्नरेन्न ॥ २८ ॥ पंचमां
 शपदेपि समेषु शुभेषु राजानो वा ॥ २९ ॥ स्वलेयमे-
 पाभ्यां राजचिह्नानि ॥ ३० ॥ इत्युपदेशस्तत्रे तृतीये
 प्रथमःपादः ॥ १ ॥ यज्ञजनेशाम्बां स्वकारकाभ्यां
 निधनम् ॥ १ ॥ निधनं लेयलाभयोः प्राणि ॥ २ ॥
 गुरौ केन्द्रे मन्दाराभ्यां दृष्टे शनिभोगहेतौ कक्षपाप-
 वादः ॥ ३ ॥ रिपुरोगयोश्चन्द्रे ॥ ४ ॥ स्वभावंगैश्च ॥ ५ ॥
 रोगतुङ्गयोर्वा ॥ ६ ॥ तत्र शनौप्रथमम् ॥ ७ ॥ राहौ द्वि-
 तीयम् ॥ ८ ॥ केतोस्तृतीयं निधनम् ॥ ९ ॥ तत्तु त्रिको-
 णेषु ॥ १० ॥ चरे प्रथमम् ॥ ११ ॥ स्थिरे मध्यमम् ॥ १२ ॥
 दन्देऽन्त्यम् ॥ १३ ॥ एवं चरस्थिरद्वन्द्वचराभ्याम् ॥ १४ ॥
 स्वपितृचन्द्राः ॥ १५ ॥ तत्र शनिकक्ष्यान्हासः ॥ १६ ॥
 रिपुपट्टाष्टमयोश्च ॥ १७ ॥ प्रथममध्यमयोरन्त्यमध्यम-
 योर्वा ॥ १८ ॥ शुभदृग्योगान्न ॥ १९ ॥ पितृलाभेश-
 योरस्यैव योगे वा ॥ २० ॥ अप्रसङ्गवादात्प्रामाण्यं रौ-
 गयोः प्राणिसौरदृष्टियोगाभ्याम् ॥ २१ ॥ द्वारचाखयो-
 र्पवादः ॥ २२ ॥ द्वारे चन्द्रदृग्योगान्न ॥ २३ ॥ के-
 वलशुभसम्बन्धे बाले च ॥ २४ ॥ लेयरोगकूराश्रये-
 ऽपि ॥ २५ ॥ रोगक्षेत्रिकोणदशान्दे ॥ २६ ॥ रोगनवां-
 शदशाभ्यां निधनम् ॥ २७ ॥ तत्रापि शनियोगे ॥ २८ ॥
 मिश्रे शुभयोगान्न ॥ २९ ॥ लग्नेन्दोर्भावे स्वलाभयोर्भा-

वयोः क्रूरे रुद्राश्रयेऽपि ॥ ३० ॥ नवापवादानि ॥ ३१ ॥
 इनशुक्राभ्यां रोगयोः प्रामाण्यं निधनम् ॥ ३२ ॥
 महेश्वरब्रह्मयोराद्यन्तयोः ॥ ३३ ॥ चरनवांशदशायां
 निधनम् ॥ ३४ ॥ चित्तनाथाभ्यां रिपुरोगचित्तकर्म-
 णि ॥ ३५ ॥ क्रूरग्रहेषु सद्योऽरिष्टम् ॥ ३६ ॥ शनि-
 राहुचन्द्रयोगे सद्योऽरिष्टम् ॥ ३७ ॥ कोणाश्रयेषु स-
 द्योऽरिष्टम् ॥ ३८ ॥ सर्वमेवं पापग्रहेषु च ॥ ३९ ॥ केव-
 लरिपुरोगचित्तनाथाभ्याम् ॥ ४० ॥ तत्रापि चित्तना-
 थापहारे ॥ ४१ ॥ इत्युपदेशसूत्रे द्वितीयः पादः ॥ २ ॥
 लेपलाभयोः पदम् ॥ १ ॥ पदभावयोश्चरे ॥ २ ॥ कान्-
 त्तराशौ कर्मणि दुष्टं मरणं कर्मणि पापे राजाभ्यां य-
 थासनुधे ॥ ३ ॥ दिनेदिने पुण्यम् ॥ ४ ॥ तत्र कर्मादि
 ॥ ५ ॥ तत्र कर्मादि ॥ ६ ॥ चराचरयोर्विपरीतकाले
 ॥ ७ ॥ ततः कोशे ॥ ८ ॥ पत्नीदृष्टमात्रगुरुयुक्ते ॥ ९ ॥
 पापदृष्टयोगे ॥ १० ॥ पापाणमरणे ॥ ११ ॥ अत्रकेतुयुक्ते
 ॥ १२ ॥ दोषेण हननम् ॥ १३ ॥ केतौ पापदृष्टौ वा ॥ १४ ॥
 अत्रशुभयोगे ॥ १५ ॥ मलिनभावे कान्तराशौ कर्मणि
 दुष्टमरणम् ॥ १६ ॥ क्रूराश्रये सर्वशुलादि ॥ १७ ॥ राहुदृष्टौ
 निश्चयेन ॥ १८ ॥ राहुशनिभ्यां दुष्टबलादि ॥ १९ ॥
 तत्रप्रतिबन्धः ॥ २० ॥ कुजकेतुभ्यां नित्यं च ॥ २१ ॥
 वाशीयोग्यफूलर्दे (?) ॥ २२ ॥ मृत्युरोगाभ्यां राहु-
 चन्द्राभ्यां यथास्वं मृत्युः ॥ २३ ॥ अत्र भावकरादि
 ॥ २४ ॥ तुरगवृषवर्गे ॥ २५ ॥ अत्र कुजास्कोटकादि-
 कुण्डलधरश्च ॥ २६ ॥ रत्नाकरयोगे ॥ २७ ॥ कालद-

ण्डान्मरणम् ॥ २८ ॥ शेषा भुजङ्गादि ॥ २९ ॥ कीटवृषवृ-
 श्रिकांशे ॥ ३० ॥ रोगमातृदृष्टयोर्भावे मूषकादित मृतिः
 ॥ ३१ ॥ तत्रमन्दे ॥ ३२ ॥ विषपानादि ॥ ३३ ॥ सौ-
 म्यदृष्टयोगाभ्यां मण्डूकभेदादि ॥ ३४ ॥ स्वांशग्राह्याद-
 णनामभिः ॥ ३५ ॥ लेयान्मृत्युः ॥ ३६ ॥ चले मृत्युः
 ॥ ३७ ॥ भाग्ये दण्डात् ॥ ३८ ॥ कर्मे विषभक्षणात् ॥ ३९ ॥
 दारि ज्वरभयम् ॥ ४० ॥ मातरिशत्रुहतः ॥ ४१ ॥ शनौ
 रिपु भयम् ॥ ४२ ॥ लाभेकुष्ठरोगः ॥ ४३ ॥ विषूची-
 जलरोगादि देहे ॥ ४४ ॥ धिने खड्गादौ ॥ ४५ ॥ नित्य
 दुर्मरणम् ॥ ४६ ॥ तत्र रवियोगे रिपुशस्त्राग्निभयम् ॥ ४७ ॥
 चन्द्रेण कूपे ॥ ४८ ॥ कुजेन व्रणस्फोटादि ॥ ४९ ॥ बुधेन
 वृक्षपर्वतादयः ॥ ५० ॥ गुरुणा स्ववैषम्ये रौ पावकः
 शुकेण शुक्लमेहात् ॥ ५१ ॥ शनिना विषभक्षणादि ॥ ५२ ॥
 राहुकेतुभ्यां विषसर्पलोष्टबन्धनादिभिः ॥ ५३ ॥ शनि-
 राहुभ्यां राहुणादण्डादि ॥ ५४ ॥ तत्र गुरुराहुभ्यामभि-
 चारादि ॥ ५५ ॥ तत्र गुरुशनिभ्यां दृष्टेयथास्वनाशः
 ॥ ५६ ॥ स्वत्रिंशांशे कौलकाफलरोगादि ॥ ५७ ॥ ल-
 लाटं प्रथमम् ॥ ५८ ॥ केशं द्वितीयः ॥ ५९ ॥ बधिरं
 तृतीयः ॥ ६० ॥ चतुर्थोऽनेत्रे ॥ ६१ ॥ सिंहादौ पञ्चमे
 ॥ ६२ ॥ षष्ठं जिह्वाग्रे ॥ ६३ ॥ पूर्वपष्ठे राहुकेतुभ्यां स्व-
 जिह्वादि ॥ ६४ ॥ तत्र शनिमान्दिभ्यां गलदादि ॥ ६५ ॥
 तत्र कुजेशोऽपः ॥ ६६ ॥ लाभो मरणम् ॥ ६७ ॥ तत्र
 रवौ प्रतिबन्धः ॥ ६८ ॥ कौन्तायुधधनौ रोगे ॥ ६९ ॥
 सायकैर्धनम् ॥ ७० ॥ अशनिद्वतकाये ॥ ७१ ॥ मार्गे मार्गे

रिपूणा वैरिवर्गश्च स्ववैपम्ये रिपुः ॥७३॥ क्रूराश्रयव-
 लेरिपुहतः ॥७४॥ शन्यारफणिवर्गाद्यैः ॥७५॥ भावे-
 शाक्रान्तराशिस्थः ॥७६॥ रविद्युक्तदृष्टे प्राथमिकः
 ॥७७॥ तत्र चन्द्रान्निश्रयेनाकुजेन ज्ञातिभ्यः ॥७८॥
 तत्र शनौ मृत्युवादाग्निकरणश्च ॥७९॥ स्वांशेऽपि ८०
 अन्यतरांशश्च ॥ ८१ ॥ नीचाश्रये विपरीतम् ॥८२॥
 तत्र शनौ रूपे ॥८३॥ विपभक्षणादि ॥८४॥ तनुतनौ
 दण्डहरम् ॥८५॥ तत्र भावविशेषः ॥८६॥ (१) अघ-
 श्वनिधनं ॥८७॥ मातापित्रोर्द्वितीयः ॥८८॥ ज्ञा-
 तिवर्गभ्रात्रादिस्वृतीयः ॥८९॥ कलत्रं चतुर्थं ॥९०॥
 पुत्रंपञ्चमम् ॥९१॥ शत्रुवर्गं षष्ठम् ॥९२॥ तत्रपापानां
 सन्निकृष्टम् ॥९३॥ जनने ॥९४॥ लाभे स्त्रिया विपत्तिः
 ॥९५॥ भावे स्वकर्मचित्तांशात्स्वांशे निधने निधनम्
 ॥९६॥ स्वभूत्वात्पतनम् ॥९७॥ श्ले मृतिः ॥९८॥
 धनेन ज्ञानवान्मरणम् ॥ ९९ ॥ नयने ग्रहणीरोगादि
 ॥१००॥ श्ले शत्रुमरणम् ॥१०१॥ उच्चैः ग्रहभातिः
 ॥२॥ तत्र रविशनिभ्यामोजे क्रूराशौ युग्मे निर्णयः
 ॥३॥ धनसुखाभ्यां पादरोगः ॥४॥ तनुविक्रमाभ्या-
 मङ्गुलिरोगः ॥५॥ तत्र केतुना अंगहीनश्च ॥६॥ तत्र
 पापदृष्टे पादहीनः ॥७॥ अथवलानि ॥८॥ प्राणिनि
 शुभयुक्ते ॥ ९ ॥ राशिचलभागे ॥ १० ॥ चरपर्यायेन
 ॥ ११ ॥ शुभदृष्टे पादहीनः ॥१२॥ शुभदृष्टिनिश्ले
 ॥१३॥ अंशत्रिश्ले वा ॥१४॥ भावकोणाभ्यां निसर्ग-
 तः ॥१५॥ आश्रयतोवल्लिष्ठः ॥ १६ ॥ यादिभरांशौ

पितृलाभयोः ॥१७॥ स्वकर्मभेदेन ॥ १८ ॥ मृत्तित्वे
 परिपाताभ्यां जघन्यायुषि तत्रपरिपाके ॥ १९ ॥ एवं
 निधनं मातापित्रोः ॥२०॥ भूम्यंशश्चनिवृत्तिकारकः
 ॥२१॥ नायान्तसंज्ञाः स्युः ॥२२॥ कर्मस्थाचरपर्याये
 ॥२३॥ भाग्यदारयोः स्थिरोभयोः ॥२४॥ भाग्यका-
 रकाभ्यामङ्गलपदम् ॥२५॥ मृत्युः मृत्युपि ॥२६॥
 अन्यैरन्यथा ॥ २७ ॥ मृतमन्यत् ॥ २८ ॥ इत्युपदेशे
 आयुर्दायापवादो तृतीये तृतीयः पादः ॥३॥ पुनः पदः
 तदे ॥१॥ उपग्रहयुक्ते श्रीमन्तः ॥२॥ आधानपितुर्ल-
 म्पेपम् ॥३॥ सूर्यात् कर्मणि पित्रोः ॥४॥ पुनः पदोत्तर-
 योः ॥५॥ पदाभ्यामभृगुसौम्यव्यतिरिक्ते ॥६॥ दिनकरे
 लाभयोनिसंज्ञाः स्युः (?) ॥ ७ ॥ प्रियानुपपत्तिः
 ॥८॥ तत्र पाककर्म ॥९॥ स्वकर्मव्याघ्रश्च ॥१०॥ दिन
 करत्रिकोणिलाभपदे गर्भसंप्रवे ॥ ११ ॥ तत्र गर्भपाते
 ॥१२॥ रविकेत्वंशे शुक्रशोणितौ ॥१३॥ गुरुत्रिंशांशे
 ॥१४॥ चन्द्रद्वयोर्गो ॥१५॥ सुकलिष्वयोः ॥१६॥
 शुक्लरेतौ ॥ १७ ॥ वर्णपरिपाकम् ॥१८॥ यस्याधानं
 चन्द्रद्वयोर्गो ॥१९॥ यथा आधानपरिपाके च चन्द्र-
 बुधभृगुयोगाभ्यामाधानपरिमिते ॥२०॥ सुवर्णारणि-
 संयोगे ॥२१॥ शनिचन्द्राभ्यां नाभिरधः ॥२२॥ गर्भ-
 वायुपरिवृत्ते ॥ २३ ॥ तत्र केतुनापुष्करसजात्यादि-
 केत्वं तम् ॥२४॥ ग्रहानतिरेतः ॥ २५ ॥ अन्ययोनि-
 गर्भेष्वजः ॥२६॥ राहुचन्द्राभ्यांवीरतमः ॥२७॥ अयो
 रोपपत्तिः कर्मणि पाके एवंगर्भनिर्णयं ॥२८॥ स्या-

नाद्यैः स्वांशगश्च ॥ २९ ॥ यथा धर्मशीले ॥ ३० ॥ स्वां-
 शग्रहैर्नीचउच्चयोः ॥ ३१ ॥ क्रियमेवल्लभेषु ॥ ३२ ॥
 अथ रविप्राणाः ॥ ३३ ॥ नैसर्गिकवलेष्वभियोगशूल
 इह जायते ॥ ३४ ॥ पुंपुमान् ॥ ३५ ॥ बाण इति ॥ ३६ ॥
 अत्रोदाहारः ॥ ३७ ॥ केतुशनिभ्यां रक्तप्रदरः ॥ ३८ ॥
 शनौ पातयोगे कृष्णवर्णः ॥ ३९ ॥ शनिशुक्राभ्यां श्या-
 मवर्णः ॥ ४० ॥ गुरुशशिभ्यां गौरवर्णः ॥ ४१ ॥ शनि-
 नबुधाभ्यां नीलवर्णः ॥ ४२ ॥ शनिकुजाभ्यां रक्तसु-
 वर्णः ॥ ४३ ॥ शनिचन्द्राभ्यां श्वेतवर्णः ॥ ४४ ॥ स्वां-
 शवशादौरनीलादीनि ॥ ४५ ॥ तथाप्युदाहरन्ति ४६
 रेतः सिञ्चन्प्रजाः प्रजनयमिति विज्ञायते ॥ ४७ ॥ चरे-
 पापदृग्योगे पुत्रनाशः ॥ ४८ ॥ शुक्रदृग्योगे पुत्रलाभः
 ॥ ४९ ॥ पापशुभदृग्योगाभ्यां प्रथमवर्णक्रमेण हासा-
 वृत्तिः ॥ ५० ॥ यन्नवभागे नवांशाभ्यां संख्यावृद्धिः
 ॥ ५१ ॥ बीजयुगबलयोर्विन्दुपतनकाले यमला याम्-
 ध्वतः शुभपापयोश्चरस्थिरयोरर्द्धं तोतादिकनेत्रविकृ-
 तोष्ठनासिकं मुखकर्णकेशदन्तपटलपादाङ्गहीनकुञ्जव-
 धिरमृल्लंगोपांगसुशिरकेशावर्तचक्रबीजविपर्यासकुन-
 खीवृषोन्नतवृहन्नाभिनेत्रः पार्श्वदृष्टयोरन्धकुञ्जवामनस-
 त्वस्वरनीचस्वरहीनस्वरेत्यादिष्वपि पितृमात्रोर्वलानि
 ॥ ५२ ॥ एवमृक्षाणां बलानि ॥ ५३ ॥ स्वपितृभाग्ययोः
 परिपाककाले ॥ ५४ ॥ इति तृतीयाध्यायोगर्भवर्ण-
 ननिर्णयोत्तम चतुर्थः पादः समाप्तश्चाध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पितृदिनेशयोः प्राणी देहः ॥ १ ॥ लाभचन्द्रयोः प्राणि-
 हृदयम् ॥ २ ॥ लियचन्द्रयोः प्राणिशिरः ॥ ३ ॥ भाग्यच-
 न्द्रयोः प्राणिमुखम् ॥ ४ ॥ कामचन्द्रयोः प्राणी कण्ठः
 ॥ ५ ॥ दारचन्द्रयोः प्राणीबाहुः ॥ ६ ॥ मातृचन्द्रयोः प्रा-
 ण्युदरम् ॥ ७ ॥ ततश्चन्द्रयोः प्राणिजघनम् ॥ ८ ॥ लाभच-
 न्द्रयोः प्राणी पृष्ठः ॥ ९ ॥ दिनचन्द्रयोः प्राणी गुदः
 ॥ १० ॥ धनचन्द्रयोः प्राणी पादौ ॥ ११ ॥ रिःफचन्द्रयोः
 प्राणी नेत्रे ॥ १२ ॥ शूलचन्द्रयोः कर्णयोः प्राणी कर्णौ
 ॥ १३ ॥ रौप्यचन्द्रयोः प्राणी नासिके ॥ १४ ॥ एवं
 द्वादशभाषानाम् ॥ १५ ॥ प्राणिबलानि ॥ १६ ॥ अप्रा-
 ण्यपि पापदृष्टः ॥ १७ ॥ प्राणिनि शुभदृष्टः ॥ १८ ॥ तत्त-
 त्त्रावे जन्मसूचितम् ॥ १९ ॥ आजन्मादिर्वपुःपु ॥ २० ॥
 पित्रोः प्राक्काले ॥ २१ ॥ शस्त्रमेव मातापितरौ जनयतः
 ॥ २२ ॥ अशोणितो क्लीबश्च ॥ २३ ॥ एवंभावविचारः
 ॥ २४ ॥ अद्भुताभ्यां तु ॥ २५ ॥ वर्णभेदाश्रयेण ॥ २६ ॥
 जीवेन्दुबुधादयः ॥ २७ ॥ ब्राह्मणश्चरविः कुजः क्षत्रः २८
 शनिः शूद्रश्च ॥ २९ ॥ राहुर्दूरजातिः ॥ ३० ॥ केतुश्चाण्डा-
 लः ॥ ३१ ॥ वर्णभेदेन पुत्रलाभाभ्यां मृगवर्ण ॥ ३२ ॥
 आसुरत्रयं च ॥ ३३ ॥ यदि पापत्राहुर्यं तत्र रमणीजा-
 लः ॥ ३४ ॥ सुसूक्तेशानि ॥ ३५ ॥ पडानि ॥ ३६ ॥ शनि-
 राहुकेतुजेषु वैपरीत्यम् ॥ ३७ ॥ तालुतेफोफस्यशेवले
 मित्रावरुणवले (?) ॥ ३८ ॥ मृत्युना कैवल्यम् ॥ ३९ ॥
 शृङ्गारेलाटः ॥ ४० ॥ प्राणपाणी वले ॥ ४१ ॥ मृत्युविचि

चे॥४२॥माधुरीकन्ये॥४३॥मांजिष्ठेष्टमे ४४ मानुषि
 कुरूपः॥४५॥मरणे माने॥४६॥मायामालिङ्गे॥४५॥
 शुभेनकर्मणि पितृनियोजयोजयेत्॥४८॥पापे मातरि
 मिश्रे आतरः४९शुभपापमिश्रे विरूपः॥५०॥मातुना
 शोकः ॥५१॥ चंद्रागृह्ययोगा निश्चयेनास्वमूर्तिपुरुषे
 कालरूपः ॥५२॥ तिर्यग्दृष्टौ प्रायो निवृत्तिकारकः
 ॥५३॥ शूलेशयोदीरयोशतोऽधंगुरुदृष्टेच॥५४॥इति
 उपदेशे चतुर्थे प्रथमःपादः॥१॥बलपदयोः प्राणी मा-
 रकःरुद्राश्रयेऽपि॥२॥भावेऽपिबलदृष्टंन्तिः ॥३॥ओ-
 ज्युग्मयोः प्राणिबलम्॥४॥अभिपश्यंति भावानि ५
 शुभान्यतराणिच६प्रत्युक्शूले नित्यविक्रमे बुधशुक्रा-
 भ्यान्दंतोऽष्टपटलपाश्वः॥७॥करकर्णाभ्योमृत्युचित्त-
 योर्विपरीतम् ८लघ्नेऽपित्रिकभावेपि कामनाथयोरैक्ये
 यमलः ९कामनाथप्राणिनि शुभम् १० स्वनाथप्राणि-
 नि च्युतयोः ॥११॥ भावयोः प्राणिनि कक्ष्यान्हासः
 ॥१२॥शुभयोगबलाच्चैवम्॥१३॥मिश्रे समाः प्राणि-
 हीने विपरीतम् १४ समेनित्यम्॥१५॥भाग्ययोर्बलम्
 ॥१६॥गुरुचन्द्रयोर्धर्मधनैक्ये कर्मबले॥१७॥मेपे वि-
 परीतम् १८ ततः प्राणाः स्वपितृयोगः॥१९॥शुद्धस्व
 काले॥२०॥अनुकूललेये तुङ्गेनीचे॥२१॥भावबला-
 भ्यां तु ॥२२॥केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु राहुकुजो जानुहा
 वीरिकेवलराहौतत्र निधनं ॥२३॥भौमदृग्योगान्नि-
 श्रयेन २४ तत्र शनौ गुरुदृग्योगे सेतुयोग्यं स्वत्रिको-
 णराशिषु ॥२६॥ पदे चापदभावे स्वामिन इत्यम् २६

ष्वफलादिशुभवर्गयुतिशेषास्त्वन्ये ॥२७॥ मूर्तिरूपं
 च ॥२८॥ स्वकारकव्यतिरिक्तेषु ॥२९॥ भावबले च-
 न्द्राश्रयेऽपि ॥३०॥ दारे मित्रस्वपितृभ्याम् ३१ भावशू-
 लदृष्ट्या च ॥३२॥ पितृनाथदृष्ट्यारोगाः ॥३३॥ पुत्र-
 पुत्रनाथदृष्ट्यादरिद्राः ३४ शूलनाथदृष्ट्या व्ययशी-
 लः ॥३५॥ रिपुनाथदृष्ट्या कर्म ॥३६॥ धननाथदृष्ट्या
 निरोगी च ॥३७॥ माननाथदृष्ट्याप्रबलः ॥३८॥ दारे-
 शदृष्ट्या सुस्त्रिनः ॥३९॥ कामेशदृष्ट्याप्रध्वंसः ॥४०॥
 भाग्यनाथदृष्ट्या सूरूपः ॥४१॥ सर्वदृष्ट्याप्रबलः ४२
 दारभाग्ये च ॥४३॥ वर्णपदाश्रयकोणेषु ॥४४॥ शुके च
 ४५ कोणयोः शुभेषु मित्रप्रागपवर्गे ॥४६॥ केन्द्रत्रि-
 कोणयोः शुभेकालबलानि ॥४७॥ इत्युपदेशसूत्रे चतु-
 र्थेऽध्याये द्वितीयः पादः २ बुधशुक्रयोर्गुमे स्त्रीजननं १
 ॥२॥ अंशभेदेन लिप्तविलिप्ताः ॥३॥ कालकाः ॥४॥
 अनुलिप्ताश्च ॥५॥ दिनाद्विचतुःसंख्यादि ॥६॥ नवभा-
 गशेषे ॥७॥ आद्यंशके ॥८॥ ग्रहक्रमेण वर्णे ॥९॥ पुमान्पुं-
 प्रजः ॥१०॥ अन्ये स्त्रियः ॥११॥ क्लीबे पूर्वापरौ ॥१२॥
 एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ॥१३॥ नीचेदारांशकः ॥१४॥ आ-
 द्यादिस्ववर्णः ॥१५॥ मित्रभेदाभ्यां चरपर्यायेण संज्ञाः
 स्युः ॥१६॥ धात्वादिरूपवर्णेन १७ स्वांशगैश्च बलः १८
 रविकुजौ रक्तौ ॥१९॥ बुधशुक्रौ श्यामौ ॥२०॥ कृष्णेत-
 राः स्युः ॥२१॥ त्रित्रिभागे चरस्थिरोभयपर्याये ॥२२॥
 घटिकापष्टिनिर्णये ॥२३॥ अंशस्यैकस्य पंचघटिकाः
 ॥२४॥ एवं द्वादशपंचस्युः विघटिकादिक्रमेण ॥२५॥

चे॥४२॥माधुरीकन्ये॥४३॥मांजिष्ठेष्टमे ४४ मातृपि
 कुरूपः॥४५॥मरणे माने॥४६॥मायामालिङ्गे॥४५॥
 शुभेनकर्मणि पितृनियोजयोजयेत्॥४८॥पापे मातरि
 मिश्रे भ्रातरः४९शुभपापमिश्रे विरूपः॥५०॥मातुना
 शोकः ॥५१॥ चंद्रागृहयोगा निश्रयेनास्वमूर्तिपुरुषे
 कालरूपः ॥५२॥ तिर्यग्दृष्टौ प्रायो निवृत्तिकारकः
 ॥५३॥ शूलेशयोदीरयोशतोऽधंगुरुदृष्टेच॥५४॥इति
 उपदेशे चतुर्थे प्रथमःपादः॥१॥बलपदयोः प्राणी मा-
 रकःरुद्राश्रयेऽपि॥२॥भावेऽपिबलदृष्टान्तः॥३॥ओ-
 जयुग्मयोः प्राणिबलम्॥४॥अभिपश्यन्ति भावानि ५
 शुभान्यतराणिच६प्रत्यक्षशूले नित्यविक्रमे बुधशुक्रा-
 भ्यान्दंतोऽष्टपटलपाश्वाः॥७॥करकर्णाभ्योमृत्युचित्त-
 योर्विपरीतम् ८लगेऽपित्रिकभावेपि कामनाययोरैक्ये
 यमलः ९कामनायप्राणिनि शुभम् १० स्वनायप्राणि-
 नि च्युतयोः ॥११॥ भावयोः प्राणिनि कक्ष्यान्हासः
 ॥१२॥शुभयोगबलाच्चैवम्॥१३॥मिश्रे समाः प्राणि-
 हीने विपरीतम् १४ समेनित्यम्॥१५॥भाग्ययोर्बलम्
 ॥१६॥गुरुचन्द्रयोर्धर्मधनैक्ये कर्मबले॥१७॥प्रेपे वि-
 परीतम् १८ ततः प्राणाः स्वपितृयोगः॥१९॥शुद्धस्व
 काले॥२०॥अनुकूललेये तुङ्गेनीचे॥२१॥भावबला-
 भ्यां तु ॥२२॥ केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु राहुकुजोऽज्ञानुहा
 वीरिकेवलराहौतत्र निधनं ॥२३॥ भौमहृग्योगान्नि-
 श्रयेन २४ तत्र शनौ गुरुहृग्योगे सेतुयोग्यं स्वत्रिको-
 णराशिषु ॥२६॥ पदे चापदभावे स्वामिन इत्यम् २६

ह्रस्वफलादिशुभवर्गयुतिरोपास्त्वन्ये ॥२७॥ प्रतिरूपं
 च ॥२८॥ स्वकारकव्यतिरिक्तेषु ॥२९॥ भावबले च-
 न्द्राश्रयेऽपि ॥३०॥ दारे मित्रस्वपितृभ्याम३१ भावश-
 लदृष्ट्या च ॥३२॥ पितृनाथदृष्ट्यारोगाः ॥३३॥ पुत्र-
 पुत्रनाथदृष्ट्यादरिद्राः ३४ शलनाथदृष्ट्या व्ययशी-
 लः ॥३५॥ रिपुनाथदृष्ट्या कर्म ॥३६॥ धननाथदृष्ट्या
 निरोगी च ॥३७॥ माननाथदृष्ट्या प्रबलः ॥३८॥ दारे-
 शदृष्ट्या सुस्तिनः ॥३९॥ कामेशदृष्ट्या प्रध्वंसः ॥४०॥
 भाग्यनाथदृष्ट्या सुरुपः ॥४१॥ सर्वदृष्ट्या प्रबलः ४२
 दारभाग्ये च ॥४३॥ वर्णपदाश्रयकोणेषु ॥४४॥ शुके च
 ४५ कोणयोः शुभेषु मित्रप्रागपवर्गे ॥४६॥ केन्द्रत्रि-
 कोणयोः शुभेकालबलानि ॥४७॥ इत्युपदेशस्तत्र चतु-
 र्थेऽध्याये द्वितीयः पादः २ बुधशुक्रयोर्गुमे स्त्रीजननं १
 ॥२॥ अंशभेदेन लिप्तविलिप्ताः ॥३॥ कालकाः ॥४॥
 अनुलिप्ताश्च ॥५॥ दिनादिचतुःसंख्यादि ॥६॥ नवभा-
 गशेषे ॥७॥ आद्यंशके ॥८॥ ग्रहक्रमेण वर्णे ॥९॥ पुमान्पुं-
 प्रजः ॥१०॥ अन्ये द्वयः ॥११॥ कृत्रिमे पूर्वोपरौ ॥१२॥
 एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ॥१३॥ नीचद्वारोशकः ॥१४॥ वा-
 द्यादिस्ववर्णः ॥१५॥ मित्रभेदाभ्यां चरपर्यायेण संज्ञाः
 स्युः ॥१६॥ अनुवादिभ्यो वर्णेन १७ स्वांशगे श्रवणः ३८
 रविकुतो मनु ॥१९॥ बुधशुक्रौ श्यामौ ॥२०॥ कृष्णेन
 राः स्युः ॥२१॥ त्रिप्रागे चरस्विरो भयपर्याये ॥२२॥
 घटिकावष्टिदिर्भेदः ॥२३॥ अंशस्यैकस्य पंचघटिकाः
 ॥२४॥ एवं द्वादशपंचस्यः विघटिकादिभ्यः

वा ॥१८॥ एतद्वागेविहीनस्तु निश्चिन्त्यः स्त्रीजातके
 ॥१९॥ इति गुरुभ्यां वर्णः ॥२०॥ स्वपितृवर्णश्च ॥२१॥
 इत्युपदेशसूत्रे चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ॥२॥ गणेषु
 गुणरमणी ॥१॥ केन्द्रत्रिकोणेषु शुभवर्गेषु ॥२॥ अकार-
 मन्दफलयोः पुमांश्च ॥३॥ चन्द्रबुधाभ्यां स्त्री च ॥४॥
 दृग्योगाभ्यामपि ॥५॥ यथानिर्हरणम् ॥६॥ रोगे पापे
 वैधवी पापदृग्योगा निश्चयेन ॥७॥ उच्चै विलम्बात् ८
 नीचै क्षिप्रम् ॥९॥ मिश्रे मिश्रात् ॥१०॥ चन्द्रकुजदृष्टौ
 निश्चयेन ॥११॥ आद्याआत्मजस्त्री ॥१२॥ कार्ये पापे
 कोणे वा ॥१३॥ पापदृग्योगकाले वियोनिसंज्ञायां
 विधित्वादिति ॥१४॥ धात्वादिर्वर्णकाले ॥१५॥ भाव-
 परिवेधनेन ॥१६॥ उच्चै स्वांशवर्गः ॥१७॥ अर्धशेषश्चा-
 दियोनिसम्बन्धः ॥१८॥ मध्येमृगाः ॥१९॥ अन्त्येकी-
 टकादयः ॥२०॥ एवमुभौ शुभलोके ॥२१॥ रविशुक्रा-
 भ्यां पापपूर्वम् ॥२२॥ अन्यैरन्यथा २३ अत्र शुभः केतुः
 ॥२४॥ पापदृग्योगात् ॥२५॥ रविराहुशुक्राः ॥२६॥
 गुरुश्रैककालादृग्योगमिति ॥२७॥ यथा चन्द्रम् २८
 तत्र गुरुवर्गे स्वाम्यंशे च ॥२९॥ स्वेशमृमित्रनीचांशक-
 श्च ॥३०॥ पूर्णेन्दुराक्षरान्तरालाश्च ॥३१॥ शुभव-
 शुभदृष्टियुतः ॥३२॥ अंशोमित्रभेदात् ॥३३॥ स्वान-
 न्दतुल्ये वा ॥३४॥ वर्गेतवांशश्च ३५ तत्र ज्ञानाज्ञाने,
 ३६ पुत्रमणिरमणी ३७ बुधकेतुर्वा ३८ शुभचन्द्राभ्याम्
 इत्युपदेशसूत्रे त्रियोनिमे नामचतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः
 इति चतुर्थाध्यायः ॥ ४ ॥